ओं श्री सदाशिवपरमात्मने नमः ।

प्रस्तावना

गत त्रिवेणीतीरस्थ महाकुम्भ के मेले में भारतवर्षीय साधुगण द्वारा संसार के मङ्गल साधनार्थ "निगमागम मंडली" के नाम से जो सभा स्थापित हुई है, उसकी नियमावली में एक प्रधान नियम है कि वर्त्तमान देश, काल, तथा पात्र के अनुसार जीवहितकारी हिन्दी भाषा के ग्रन्थ प्रकाशित किये जावें, और आवश्यकीय प्राचीन कठिन धर्म्म-ग्रन्थों पर वर्त्तमान समय उपयोगी भाषाभाष्य अतिसरल तथा हृदय-ग्राही भाषा में प्रचारित किये जावें । वर्त्तमान कालमाहात्म्य के कारण भारतवासीगणों में संस्कृत विद्या का प्रचार बहुत ही कम होगया है, एवं समय के देखने से ऐसी आशा भी नहीं होती कि पुनः संस्कृत विद्या का प्रचार बढ़े । इस कारण गभीर धर्म्मतत्वों को जबतक वर्त्तमान देश—भाषा में प्रकाशित न किया जायगा तबतक भारत के पूर्ण कल्याण होने की सम्भावना नहीं । हिन्दी भाषा ही भारतवर्ष के वर्त्तमान समय में सार्वभौम भाषा समझी जाती है; उत्तर हिमालय के पवित्र प्रदेश से लेकर दक्षिण में समुद्रतट पर्य्यन्त और पूर्व में ब्रह्मपुत्र के तीरवर्ती प्रदेश से लेकर पश्चिम में सिन्धुनदी तट तक सकल प्रदेशों में यह मधुर भाषा प्रचलित है, इसी कारण इस भाषा की सहायता से वैदिक—तत्वों का प्रकाश करना ही कार्य्यका-री समझा गया । क्रमशः उपनिषद्, षड्दर्शन तथा नाना आर्ष संहि-ताओं पर सरल और भावपूर्ण भाषाभाष्य प्रकाशित किये जावेंगे । इस महान् उद्देश्य के पूर्ण करने के अर्थ विचारवान् साधुगण परि-

श्रम कर रहे हैं, एवं कई एक ग्रन्थ रचित भी हो चुके हैं; क्रम से मुद्राङ्क कार्य्य नियमित होता रहेगा । सब से प्रथम नवशिक्षित भारतवासियों के बोधार्थ प्राचीन भारत का गौरव इस "नवीन दृष्टि में प्रवीन भारत" नामक क्षुद्र पुस्तक में प्रचारित किया जाता है । आशा है कि पाश्चात्यविद्यापक्षपाती भारतवासियों के नानासन्देह इस पुस्तक के पाठ करने से दूर हो सकेंगे । श्रीभगवान् साधुमण्डली के शीघ्र-भारतहितकारी उद्यम को पूर्ण करें विज्ञापनमिति ।

हरिद्वार
कलाब्दाः ४९९८

ग्रन्थकर्त्ता ।

ओंनमो भगवते वासुदेवाय ॥

मङ्गलाचरणम् ।

अविनय मपनय विष्णो,
दमय मनः शमय विषयमृगतृष्णाम् ।
भूतदयां विस्तारय,
तारय संसारसागरतः ॥
दिव्यधुनीमकरन्दे,
परिमलपरिभोगसच्चिदानन्दे ।
श्रीपतिपदारविन्दे,
भवभयखेदच्छिदे वन्दे ॥
सत्यपिभेदापगमे,
नाथ तवाहं न मामकीनस्त्वम् ।
सामुद्रोहि तरङ्गः,
क्वचन समुद्रो न तारङ्गः ॥
उद्धृतनगभिदनुज,
दनुजकुलामित्रमित्रशशिदृष्टे ।
दृष्टे भवति प्रभवति,
न भवति किं भवतिरस्कारः ॥

श्रीगुरवेनम ॥

नवीन दृष्टि में प्रवीन भारत

एतद्देशप्रसूतस्य सकाशादग्रजन्मनः।
स्वंस्वंचरित्रंशिक्षेरन् पृथिव्यां सर्वमानवाः॥

प्रधानधर्म्मशास्त्र प्रणेता राजऋषि मनु ने लिखा है कि इस भारतवर्ष के ब्राह्मणगणों से शिक्षा प्राप्त होकर सम्पूर्ण जगत् ज्ञान प्राप्त करेगा, अर्थात् भारतवर्ष ही सृष्टि के आदि में ज्ञान की पूर्णता को प्राप्त करके परवर्ती काल में इस पृथिवी के और देशों को अपने उपदेशद्वारा शिक्षित करेगा। भारत के इस नवीन युग में, कराल कलिकाल के इस वर्तमान विकराल समय में, प्राचीन आर्य्य जाति की इस अध पतित अवस्था में कौन इस मनुवाक्य को विश्वास कर सकता है। जब देखते हैं कि भारतवासी आज दिन सामान्य ज्ञान प्राप्ति के अर्थ और देशवासियों के द्वार पर भिखारी बने फिरते है, जब देखते हैं कि और जातियों की साधारण युक्ति से ही आर्य्यजाति ने स्वीकार कर लिया है कि हम भी दूसरे देश के रहनेवाले थे, हम भी पूर्वकाल में असभ्य अज्ञानी पशुवत् थे, जब देखते हैं कि उन्होंने अनार्य्यभाव को आर्य्यभाव समझ कर ग्रहण कर लिया है और त्रिकालदर्शी महर्षियों उपदेशित आर्य्यभाव को अनार्य्य असभ्यभाव समझ कर त्याग देने में अग्रसर हुए हैं, तब कैसे विश्वास करेंगे कि वे ऐसे शास्त्र वाक्यों को सत्य समझ सके हैं।

जिस प्रकार उन्मादग्रस्त मनुष्य बुद्धिनाश के कारण सारे संसार को उन्मादग्रस्त देखता है, वैसे ही काल प्रभाव के कारण कुशिक्षा प्रभाव से बुद्धि मलीन होकर आज दिन आर्य्य संतान भी अपने आप को अनार्य्य समझने लगे हैं, और इस कारण ही वे अपने अभ्रान्त शास्त्र वाक्यों को भ्रान्तिमूलक समझने में प्रवृत्त हुए हैं। आजकल के नवीन भारतवासी कहते हैं कि हम अयुक्तिक विषय नहीं मानते, यदि युक्तियुक्त विषय होतो स्वीकार कर सक्ते हैं। इस कारण उन के ही वर्त्तमान पश्चिमी गुरुगणों के प्रामाणिक लेख तथा सिद्धान्त समूह द्वारा सिद्ध किया जायगा कि महर्षिगणों की इस प्रकार की भविष्यत्वाणी मिथ्या अथवा काल्पनिक नहीं है, इस क्षुद्र पुस्तक में उनकी ही नवीन युक्तिसमूह तथा साक्षात् प्रमाण व पश्चिमी विद्वान् गणों के अनुमान प्रमाण द्वारा ही पूज्यपादमहर्षि गणों की गंभीर, पूर्ण और अभ्रान्त ज्ञान गरिमा का प्रमाणसंग्रह द्वारा नवीनशिक्षा प्राप्त भारत का भ्रम दूर करने में यत्न किया जा रहा है, वस्तुतः उनकी ही नवीन दृष्टि से आज इस प्रबन्ध में प्रवीन भारत की अवस्था का विचार किया जारहा है।

प्रकृति विचार।

बहिःप्रकृति अन्तःप्रकृति की धात्री है, जैसे बहिःप्रकृतियुक्त स्थान में जीव लालित पालित होगा उसकी अन्तःप्रकृति भी तद्रूप ही होती जायगी। मानवगण जैसी प्रकृति माता की गोद में प्रतिपालित होते हैं उनसे वैसीही शिक्षा को भी प्राप्त होते हैं, प्रकृति माता उन को अपने हाव भाव और इङ्गित द्वारा जैसे सिखाती जाती है वैसेही वे प्रकृति पुत्र उठना, बैठना, हँसना, बोलना आदि कार्य्य सीखते जाते हैं।

यह बहिःप्रकृति के बल का ही कारण है कि आफ़्रिका देश में कृष्णवर्ण काफ़री और यूरोप देश में श्वेतवर्ण फ़िरंगी जन्मते हैं;यह प्रकृति के बल का ही कारण है कि मनुष्य पिता माता से जन्मा हुआ शिशु व्याघ्र-सङ्ग में प्रतिपालित होकर (जैसे कानपुर ज़िले में सन् १८५९ई०में एक चौदह पन्दरह साल का बालक भेड़ियों के सङ्ग में मिला था) व्याघ्र-वृत्ति को धारण कर लेता है; यह प्रकृति के बल का ही कारण है कि एक आर्य्यजाति ही जब पञ्जाब में जन्म ग्रहण करते हैं तो बलशाली और साहसी होते हैं; और वेही जब बङ्ग देश में जन्म ग्रहण करते हैं तो अति दुर्बल, साहस हीन, परन्तु बुद्धिमान् होते हैं। भारत की प्रकृति और सब देशों की प्रकृति से कुछ विलक्षण ही है। जगत् के किसी देश में तीन ऋतु, और किसी देश में चार ऋतु प्रकट हुआ करते हैं; परन्तु यह भारतवर्ष ही है कि जहां छःओं ऋतु पूर्णरूपेण प्रकाशित होते रहते हैं। जगत् के विशेष विशेष देशों में एक समय पर एक ही ऋतु प्रकट हुआ करता है, परन्तु यह भारतवर्ष ही है कि जहां अन्वेषण करने पर एक काल में विशेष विशेष भागों में विशेष विशेष ऋतु प्रकटे ही रहते हैं; ग्रीष्मकाल में यदिच मारवाड़ प्रदेश में घोर ग्रीष्मता का विकाश होता है, तथापि उसी समय में दाक्षिणावर्त्त में वसन्त और हिमालय की ओर नाना प्रदेशों में शीत,शिशिर आदि ऋतुओं का प्राइुर्भाव भी बना रहता है; मानों यह भारतवर्ष ही है कि जहां छः ऋतुगण हस्तधारण करते हुए विचरण करते ही रहते हैं; ऋतुगणों में भ्रातृ प्रेम होना भारतवर्ष में ही सम्भव है। यह भारतवर्ष ही है कि जहां पृथिवी के सब पर्वतों से अति उच्चपर्वत हिमालय विराजमान है; यह भारतवर्ष ही है कि

जहां पृथिवी की सकल नदियों में पवित्र, विशेष विभूति युक्त (यूरोप के प्रधान प्रधान वैज्ञानिकों ने परीक्षा करके देखा है कि पवित्र गङ्गाजल में कदापि कीट उत्पन्न नहीं होता, और वे मुक्तकण्ठ होकर कहते हैं कि इस जल में पृथिवी के और जलों से कुछ विशेषता है) गङ्गा नदी अपने तरलतरङ्गों को धारण करती हुई जीवगणों को पवित्र कर रही है । पृथिवी के और देशों में प्रायः एक ही प्रकार की भूमि देखने में आती है परन्तु प्रकृतिमाता की लीलाभूमि इस भारतभूमि में सब प्रकार की ही भूमि दृष्टिगोचर होती है; अनन्त तुषार–आवृत पर्वत–शिखर, नाना प्रकार के वृक्ष, लता, गुल्म, ओषधि से परिपूर्ण उपत्यका, अनन्त योजन व्यापी सुन्दर समतल भूमि, घोर वालुकामय जलशून्य मरुस्थल और जलपूर्ण निम्नतल भूमि (यथा कच्छ प्रदेश में और सुन्दरबन आदि में) आदि सब प्रकार की–भूमिविचित्रता इस भारतवर्ष में ही देखने में आती है । पृथिवी के और नाना देशों में एक वर्ण के मनुष्य ही देखे जाते हैं, (यथा यूरोप में श्वेतवर्ण के मनुष्य, आफ्रिका में कृष्णवर्ण के मनुष्य और चीन में पीत वर्ण के मनुष्य इत्यादि) परन्तु यह भारत प्रकृति की ही पूर्णता है कि यहां के अधिवासियों में सब वर्ण देख पड़ते हैं, उज्वलगौर, गौर, उज्वलश्याम, श्याम, कृष्ण और पीत सब वर्ण के भारतवासी ही नयनगोचर होते हैं । यह भारत प्रकृति की ही श्रेष्ठता है कि यहां समस्त संसार के जीवजन्तुगण जन्मा करते हैं; बृहत् हस्ती से लेकर नाना प्रकार के विचित्र मूषिक तक इस भारत प्रकृति की पूर्णता को प्रमाणित करते हैं। अन्वेषण द्वारा यही सिद्ध होगा कि जितने प्रकार के श्रेष्ठ और निकृष्ट जन्तु, जितने प्रकार के श्रेष्ठ

और निकृष्ट कीट, और जितने प्रकार के श्रेष्ठ और निकृष्ट पक्षी पृथिवी के नाना देशों में उत्पन्न हुआ करते हैं, वे सब भारतवर्ष के बन और उपवनों को सुशोभित करते है, यदिच कदापि कोई विलक्षण जन्तु यहां उत्पन्न न होता हो, अथवा उसकी उत्पत्ति यहां से नष्ट होगई हो, तथापि यह मानना ही पड़ेगा कि वे सब इस भूमि में उत्पन्न होकर जीवित रह सकते है। परन्तु यहां के बहुतेरे जीवगण यदि यूरोप आदि देशों में भेजे जायें तो कदापि वहां की प्रकृति में जीवित नहीं रह सकते; इस कारण से भारतीय प्रकृति की श्रेष्ठता सर्ववादि सम्मत है। और यह तो जगद् विख्यात है कि जितने प्रकार के फल, जितने प्रकार के अन्न, जितने प्रकार के वृक्ष, लता, गुल्म, औषधि और बूटी आदि भारतवर्ष में उत्पन्न होती हैं उस प्रकार की और किसी देश में होय ही नहीं सकतीं। इस कारण यह भारतभूमि ही पृथिवी की और भूमियों की आदर्शभूमि है; इसी कारण भारत की प्रकृति ही पूर्ण प्रकृतिशक्तियुक्त है। यह कहही चुके हैं कि बहि प्रकृति अन्त प्रकृति की धातृ है ; इस कारण जब भारत की प्रकृति ही पूर्ण प्रकृति है तब भारतवर्ष में ही पूर्ण मानव का जन्म होना सम्भव है। यदिच कोई यूरोप बासी संस्कृत में विशेष ज्ञान लाभ कर लेवे, यदिच कोई चीन देश बासी अथवा कोई तुरुक देश बासी संस्कृत विद्या में निपुण हो जावे, तथापि यह प्रत्यक्ष प्रमाण सिद्ध है कि वे कदापि संस्कृत भाषा का शुद्ध उच्चारण नहीं कर सकेंगे, परन्तु यह भारतबासियों की ही शक्ति है कि वे चाहें जिस भाषा की योग्यता लाभ करें उसी भाषा के उच्चारण में पूर्ण निपुणता प्राप्त कर लिया करते हैं। धन और सम्पत्ति के सिवाय कोई मानव जाति सम्पूर्ण उन्नति को प्राप्त

नहीं कर सकती, परन्तु इस विचार में भी भारतवर्ष सर्वोत्कृष्ट ही है; इस भूमि की अद्भुत उर्वराशक्ति, इस भूमि के अन्तर्गत स्वर्ण, रौप्य, मणि, माणिक्य और नानाप्रकार के खनिज पदार्थों की खानियां, भारतसमुद्रगर्भ की मुक्ता और प्रवाल आदि मूल्यवान् पदार्थों की उत्पादिका शक्ति और भारतवर्ष के वनों के नाना अमोल पदार्थों की विचित्रता ही भारत के ऐश्वर्य्य सम्बन्ध में पूर्णता सिद्ध कर रहे हैं।यह भारतवर्ष की ऐश्वर्य पूर्णता का ही कारण है कि आज प्रायः दो सहस्र वर्ष से यह भारत विजातीय नरपति गण द्वारा नियमितरूपेण लुण्ठित होने पर भी अभी तक इस की ऐश्वर्य्यता की पूर्ण हानि नहीं हुई है, यह भारतवर्ष की ऐश्वर्य्य पूर्णता का ही कारण है कि आज दिन सर्व्व श्रेष्ठ सम्राट् गणों की तीव्रलोभदृष्टि इस पर ही बनी है; यह भारतवर्ष की ऐश्वर्य्य पूर्णता का ही कारण है कि भारतविजयी नरपति पृथिवी में सर्व्व श्रेष्ठ सम्राट् कहाता है। इन सब प्रत्यक्ष प्रमाणों के अतिरिक्त लेखद्वारा भी भारत प्रकृति की श्रेष्ठता का प्रमाण सब यूरोपीय विद्वान्गण लिखित भारतइतिहास आदि में पाया जाता है; जितने निरपेक्ष पश्चिमी ऐतिहासिक हुए हैं उन सबों ने भारतवर्ष को ही पृथिवी भर में सर्व्वश्रेष्ठप्रकृतियुक्त करके वर्णन किया है। इन कारणों से यह स्वतःसिद्ध ही है कि भारतवर्ष ही पूर्णप्रकृतियुक्त भूमि है, और पूर्णप्रकृतियुक्त मानव भारतवर्ष में ही जन्मग्रहण कर सक्ते हैं।

शरीर की पूर्णता ॥

श्री भगवान् वेदव्यासजी ने कहा है कि " *गायन्ति देवाः किल गीतगानि धन्यास्तु ते भारत भूमि भागे; स्वर्गाऽपवर्गाऽऽस्पदमार्गभूते,*

भवन्ति भूयः पुरुषाः सुरत्वात्" । अर्थात् स्वर्ग के देवत्व से भारत का मनुष्यदेह लाभ करना श्रेष्ठ है, क्योंकि सुकृतिगण यहां जन्म ग्रहण करके स्वर्ग भोग प्राप्त किया करते हैं। राजऋषि मनुजी ने भी कहा है कि "चाहे पृथिवी के और किसी भाग में जन्म हो परन्तु यदि मनुष्य अपनी आध्यात्मिक उन्नति करना चाहे तो इस श्रेष्ठ भूमि का ही आश्रय लेना उचित है" । जब मनुष्य पीड़ित अथवा हीनबल रहता है तब वह पूर्णरूपेण न तो शारीरिक शक्ति चालना कर सकता है और न मानसिक उन्नति ही लाभ कर सकता है, परन्तु रोग अथवा दुर्बलता मुक्त होने पर ही वह अपनी योग्यता के अनुसार सब कुछ कर सकता है; उसी प्रमाण के अनुसार जब मानवगण पूर्ण प्रकृति युक्त स्थान में जन्म ग्रहण करेंगे तब ही वे शारीरिक और मानसिक पूर्णता को प्राप्त कर सकेंगे; और जब प्राकृतिक पूर्णता प्राप्त करेंगे तब ही उन्नत बुद्धि युक्त होकर आध्यात्मिक पथ में अग्रसर होते हुए ऐहलौकिक और पारलौकिक श्रेष्ठता को प्राप्त कर सकेंगे । काल प्रभाव से वर्त्तमान भारत की अवस्था कुछ ही हो, अदृष्टचक्र के परिवर्त्तन से भारतवर्ष कैसी ही अधोगति को प्राप्त होगया हो; परन्तु भारतवर्ष में ही प्रकृति का विकाश है, और भारतवर्ष में ही पूर्ण मानवगण उत्पन्न होकर अपनी शक्तियों को यथावत् रख सकते हैं इस में कोई भी सन्देह नहीं । सत् प्रकृति का संग होने से शरीर उन्नत होकर सत्वगुण विशिष्ट होता है, शरीर सत्वगुण विशिष्ट होने से अन्तःकरण भी सत्वगुण को धारण करता है, इस कारण सात्विक-भूमि भारतभूमि को महर्षि गर्णों ने स्वर्ग से भी श्रेष्ठ वद दिया है । जैसी प्रकृति का संग रहेगा वैसे ही साधकगण साधनपथ में अग्रसर

हो सकेंगे, इसी कारण साधकगणों को महर्षिगणों ने साधुसंग और तीर्थसेवा का उपदेश किया है और इस कारण ही और देश वासियों को उन्हों ने साधन के अर्थ भारतवर्ष का आश्रय लेने की आज्ञा दी है। भारत की प्रकृति पूर्ण है, इस कारण ही आध्यात्मिक उन्नति की परा काष्ठा भारतवर्ष में ही सम्भव है; भारतवर्ष की प्रकृति पूर्ण है, इस कारण यह धर्म्म विस्तार की आदि भूमि समझी जाती है; भारतवर्ष की प्रकृति पूर्ण है, इस कारणही यहां की स्त्रीगण शारीरिक और मानसिक पूर्णता को प्राप्त करके जगत् में अतुलनीय हो रही हैं, उन की प्रकृति पूर्ण होने के कारण ही वे सतीत्व, शीलता, लज्जा, पतिभक्ति की पूर्णता अर्थात् पति के अर्थ ही जीवन धारण करना, वात्सल्य-स्नेह की पूर्णता इत्यादि स्त्री प्रकृति उपयोगी सत्गुण युक्त हुआ करती हैं; भारतवर्ष की प्रकृति पूर्ण है, इस कारण ही यहां के पुरुष गण स्वभाव से ही प्राय दयालु, सुशील और धर्म्म परायण हुआ करते हैं; भारतवर्ष की प्रकृति पूर्ण है, इस कारण ही सनातन वैदिक धर्म्म की शिक्षा से बहुदेशव्यापी बौद्धधर्म्म, और बौद्धधर्म्म की शिक्षा से ईसाई धर्म्म और पुन उस से ही इसलाम धर्म्म की वृद्धि होती हुई समस्त संसार में नाना धर्म्म विस्तारित हो गये हैं। प्रकृति की पूर्णता का प्रत्यक्ष प्रमाण शरीर की पूर्णता है, शरीर की पूर्णता का प्रत्यक्ष प्रमाण मानसिक पूर्णता है, और मानसिक पूर्णता का प्रत्यक्ष प्रमाण धर्म्म की पूर्णता है। धर्म्म राज्य में भारतवर्ष ने जितनी उन्नति की है, धर्म्म जगत् में भारतवर्ष ने जितना अन्वेषण किया है, उतना न तो और किसी देशने किया है और न भविष्यत् में करने की आशा है; वर्त्तमान समय के स्वदेशीय और विदेशीय सब विद्वान्‌गण ही एक

वानय से इस विषय को स्वीकार कर रहे हैं; "थिओसोफीकल् सभा" और चिकागो नगर की धर्म्ममहोत्सव-सभा के पुस्तकादि सब अपने इस विचार को पूर्णरूपेण पोषण कर रहे हैं । इस कारण यह संप्रमाण ही है कि जहां धर्म्म का पूर्ण विकाश होसके वही भूमि पूर्ण प्रकृति युक्त समझी जा सकती है; और उसी भूमि में ही धर्म्मसंग्रह लक्षण रहने के कारण वहां ही पूर्णमानव जन्म ग्रहण कर सकते हैं ।

शिल्प उन्नति ॥

बुद्धि विकाश का प्रथम लक्षण शिल्प निपुणता है । बुद्धि जब सूक्ष्म अवस्था धारण करती जाती है तब यदिच वह पूर्ण सूक्ष्मता को धारण करके आध्यात्मिक जगत् में पहुंच जाती है तत्राच प्रथम अवस्था में वह स्थूल जगत् में ही विचरण करती हुई नाना स्थूल जगत् सम्बन्धीय सुचारु विचित्रता प्रकाश करने लगती है; यही बहिर्जगत् सम्बन्धीय विचित्रताही शिल्पनैपुण्य है । इतिहास भारतवर्ष की इस शिल्प निपुणता का पूर्णरूपेण प्रमाण दे रहा है । यह भारतवर्ष की शिल्प निपुणता का ही कारण है कि पूर्व्व काल में भारत-ऐश्वर्य्य के लोभ से लोभित होकर विदेशीय नरपति साईरस्, डेरायस, सेमीरामिस्-और अलेक्ज़ंडर आदि वीरगण; और मध्यकाल में चंगेज़खाँ, महमूद ग़ज़नवी, तैमूरलङ्ग, और बाबर आदि योद्धागण; और पिछले दिनों यूरोप के स्पेनीज़्, पोर्चुगीज़, फ्रेंच और अंग्रेज़ जातिगण इस पवित्र भूमि में आये थे । यह भारतवर्ष की शिल्प निपुणता का ही कारण है कि, प्रथम में मुसलमान राजागणों ने भारत में अधिकार किया था और अब अंग्रेज़ जाति इस भूमि के अधिकारी हो

रहे हैं। यदिच अब उस शिल्प निपुणता का यहां नाम मात्र भी नहीं रहा, तथापि यह कहना ही पड़ेगा कि उस के कारण ही इन विदेशीय लोगों की दृष्टि भारत पर पड़ी थी। आज दिन भी प्राचीन इतिहास समूह, भारतवर्ष के प्राचीन मंदिर आदि के ध्वंसावशेष, और पुराणों की (रामायण में रामविवाह और महाभारत में युधिष्ठिरसभा आदि वर्णन) अद्भुत गाथा इस शिल्प निपुणता का प्रमाण भली भांति दे रहे हैं। आज कल रेलगाड़ी को देख जनगण आश्चर्य को प्राप्त होते हैं, परंतु भारतवर्ष के प्राचीन विमान, भारतवर्ष के अद्भुत अस्त्र शस्त्र समूह, भारतवर्ष के प्राचीन नानायान आदि का वर्णन पाठ करने से यह स्वतः ही सिद्ध होजायगा कि यदिच यूरोप ने शिल्प विद्या में बहुत ही उन्नति की है, तथापि उन की बुद्धि में अभी तक समाता ही नहीं है कि किस प्रकार से भारतवर्ष ने उन पदार्थों की सृष्टि की थी, किस प्रकार से भारत ने शिल्प विद्या में इतनी उन्नति कर डाली थी। थोड़े ही दिन बीते अधःपतित भारत की जो शिल्प विद्या थी; पराधीन भारतवासी भी जो काश्मीरी शाल, ढाकाई वस्त्र, काशी आदि स्थानों के पटवस्त्र और नाना सुवर्ण, रौप्य, और रत्न आदि जड़ित आभूषण आदि बनाया करते थे उस की समानता भी अभी तक शिल्पनिपुण यूरोप से नहीं की गई। इलोरा आदि स्थानों के गुफा मंदिर, श्रीजगन्नाथ आदि देवताओं के देवालय, चित्तौर आदि दुर्ग, कटक आदि स्थानों के नदीबन्ध, आगरे के ताजमहल आदि यवन मंदिर आदि प्राचीन स्थानों के देखने से प्राचीन भारत की शिल्प उन्नति का दृढ़ प्रमाण मिल सकता है। पश्चिमी विद्वानों के ऐन्टीक्विटीज़ और आर्किऑलोजी (Antiquities & Archæology.) सम्बन्धीय

ग्रन्थ ही इस विचार के प्रमाण हैं । अभी तक पश्चिमी विद्वान् गण जो भारतवर्ष के ध्वंसावशेष स्थानों के देखने को आते हैं, वे सब प्राचीन मूर्त्तियों को देख कर एक वाक्य हो यही कहते हैं कि किसी समय में भारतवर्ष ने शिल्प विद्या में उन्नति की पराकाष्ठा प्राप्त की थी; वे ऐसा भी कहते हैं कि यदि भारत शिल्प विद्या में पूर्णता न प्राप्त करता तो उन खण्डित मूर्त्तियों में नाना अलङ्कार, नाना वस्त्र, नाना आभूषण, नाना अस्त्र, नाना यान आदि के अद्भुत चिन्ह कहां से देख पड़ते क्योंकि जो पदार्थ देखने में आता है शिल्पकार गण उसी का अनुकरण कर सक्ते हैं ।

चिकित्सा विज्ञान उन्नति ॥

मानव हितकारी चिकित्सा विज्ञान में भी भारतवर्ष ही आदि गुरु है । आजकल के पश्चिमी पण्डितगणों ने यही सिद्ध किया है कि पश्चिमी चिकित्सा विद्या उन्हों ने रोम के पण्डितों से प्राप्त की थी, और रोम अधिवासियों ने वह विद्या ग्रीस से पाई थी, उन्हों ने यह भी सिद्ध किया है कि ग्रीस अधिवासी गणों ने इस विद्या में उन्नतिलाभ केवल तीन सहस्र वर्ष के अन्तर्गत ही किया है । परन्तु जब देखते हैं कि अपने आचार्य्यगणों का तिरोभावकाल प्रायः पांच सहस्र वर्ष के लगभग समझा जा सकता है; और जब यह भी ग्रीस इतिहास में देखते हैं कि ग्रीस राज्य की प्रथम उन्नत अवस्था में वहां से बहुत *राज पुरुष भारतवर्ष में आये थे और यहां से नाना विद्या भी सीख* गये थे ; पुनः जब अपनी चिकित्सा विद्या की प्रशंसा उनकी पुस्तकों में पाई जाती है; तब इन लक्षणों से मानना ही पड़ेगा कि अपनी चि-

कित्सा विद्या ग्रीस की चिकित्सा विद्या से पूर्व्व ही प्रकट हुई थी। तब यह भी स्वीकार करना पड़ेगा कि जिन को यूरोप चिकित्सकगण अपना गुरु बताते हैं भारतवर्ष उनका भी गुरु है। चिकित्सा विद्या में जो जो विषय रहने से उस की पूर्ण उन्नति समझी जासकती है, वे सब-ही आयुर्वेद में थे; शस्त्रविद्या, रसायनविद्या, धातुप्रयोगविद्या, और काष्ठादि भेषजप्रयोगविद्या सब ही अपने आयुर्वेद में पाये जाते हैं डाक्टर रायली (Dr. Raily) साहब ने बड़ी प्रशन्सा के साथ मुक्तकण्ठ होकर कहा है कि "प्राचीनभारतवासीगणों के ग्रन्थ देखने से प्रकट होता है कि वे शस्त्रचिकित्सा में विशेष निपुण थे; प्रायः १२७ प्रकार के शस्त्र वे शरीर पर प्रयोग किया करते थे; इस के अतिरिक्त शस्त्रव्यवहार के साथ नानाप्रकार की औषधियां भी प्रयोग किया करते थे"। आर्य्य चिकित्सा विद्या में विशेषता यह है कि उस में स्वतन्त्ररूपेण काष्ठादिक और धातुज औषधियों की उन्नति की है; कोई आचार्य्य केवल काष्ठादि औषधियों की ही व्यवस्था करगये हैं और कोई केवल धातुज औषधियों कोही प्रसिद्ध कर गये हैं; यदिच ऐसेभी आचार्य्य बहुत हैं कि जिन्होंने उभय प्रकार की औषधियों काही ग्रहण किया है, तथापि पूर्व्वकथित मत की स्वतन्त्रता ही अपने चिकित्साशास्त्र की विलक्षणता है। आयुर्वेदोक्त चिकित्सा शास्त्र कितनी उन्नति पर पहुंचा था वह इस के नाड़ीज्ञानशास्त्र के पाठ करने से ही अनुभव हो सकता है; कि जिसकी सहायता से नाड़ी परीक्षाद्वारा सकल प्रकार के रोगों का भली भांति निदान हो सकता है; और भी विलक्षणता यह है कि एक मात्र नाड़ी ज्ञान सेही तीन मास, छःमास, अथवा ततोऽधिक काल पूर्व्व में भी भविष्यत् रोगका निरूपण हो सकता है। यह नाड़ीज्ञानशास्त्र इतना

गभीर और सूक्ष्म है कि आजतक पश्चिमी विद्वान्गण उस को समझ नहीं सके।

युद्धविद्या की उन्नति

मुसलमान आक्रमण से पूर्ववर्त्ती समरविद्या को देख कर कोई कोई भावुक ऐसा कहने लगते हैं कि समरविद्या में भारतवर्ष ने ऐसी उन्नति नहीं की थी कि जैसी आज दिन यूरोप कर रहा है; उन का यह विचार भी भ्रमपूर्ण ही है। जब देखते हैं कि आर्य्य जाति के चार उपवेद यथा आयुर्वेद, धनुर्वेद, गान्धर्ववेद, और स्थापत्तवेद इन चारों में से एक उपवेद धनुर्वेद अर्थात् युद्धविद्या भी थी; जब देखते हैं कि प्राचीन आर्य्यजाति के युद्धास्त्र ऐसे अद्भुत थे कि जिनका निर्माण कौशल अभी तक समझ में नहीं आता; और जब देखते हैं कि उनकी अस्त्रचालन रीती और नानाव्यूहरचनाकौशल आजकल के विद्वान् गण तक नहीं समझ सकते; तब कैसे कहेंगे कि उनकी समरविद्या वर्त्तमान यूरोपीय समरविद्या से न्यूनथी। यहतो ऐतिहासिक प्रमाण ही है कि जब ग्रीस के अधिवासीगण और मुसलमान सम्राट्गण भारत में आक्रमण करते थे तो वे भारत की पादातिक, अश्वारोही, रथी और हस्त्यारोही सेना को देखकर मोहित हुआ करते थे: पृथिवीविजयी महावीर अलक्जन्डर पृथिवी की किसी जाति से नहीं डरा परन्तु केवल वह प्रथम तो राजा पुरु की वीरता से अतिमोहित हुआ और पुनः मगध सम्राट् के सेनाबल को सुनकर ही स्वराज्य में लौटगया। प्राचीन आर्य्यजाति की अद्भुत अस्त्रविद्या, वीरत्व और व्यूह रचना आदि युद्ध कौशल कितनी उन्नति को धारण किये हुए थे उस का प्र-

माण संस्कृत के प्राचीन इतिहास पाठ करने से ही भली भांति अनुभव होता है; रामायण और महाभारत लिखित महायुद्धों की वर्णना बुद्धिमान्गण शान्तचित्त होकर पढ़ने से ही यह स्वीकार करलेंगे कि भारत की समर विद्या के तुल्य यूरोप की समर विद्या होने में अभी बहुत विलम्ब है।कोई कोई यह युक्ति लगाया करते हैं कि जब भारतवर्ष बन्दूक और तोप व्यवहार नहीं जानता था तब कैसे उसकी समर विद्या की उन्नति स्वीकार करेंगे; परन्तु आर्य्यशास्त्र न पढ़नेसे ही ऐसे सन्देह उठा करते हैं। जब प्राचीन भारत के अनन्त अस्त्र शस्त्रों में नालास्त्र और शतघ्नी का वर्णन देखते हैं और जब उसके बड़े बड़े युद्धों में उन दोनों आयुधों का प्रयोग भी देखते है तब कैसे स्वीकार करेंगे की भारत वासी गणों ने बन्दूक और तोपका आविष्कार नहीं कियाथा प्राचीन ग्रन्थों के देखने से प्रमाणित होता है कि वे तोप को शतघ्नी, बन्दूक को नालास्त्र बारूद को उर्व्वघ्नी और गोला को गुडक कहा करते थे; बारूद उर्व्वनामा ऋषि द्वारा आविष्कृत हुआ था इस कारण उस को उर्व्वघ्नी कहते थे। प्राचीन कवि महर्षि बाल्मीक के प्रसिद्ध रामायण ग्रन्थ में लेख है कि " परिगृह्य शतघ्नीश्च सचक्राः सगुडोपलाः चिक्षिपुर्भुजवेगेन लङ्कामध्ये महास्वनाः,, अर्थात् अपने बाहुओं के वेग से बड़ा शब्द करने वाली चक्रयुक्त गोलापूरित शतघ्नियों को लेकर लङ्का के बीच फेंकते हुए पुनः श्रीभगवान् वेदव्यासजीके महाभारत ग्रन्थमें लेख है कि " उर्व्वघ्नीं प्रोषितां कृत्वा शतघ्नीं गुड़कै र्युताम्," अर्थात् उर्व्वघ्नी और गुड़क भर कर इस युद्ध में शतघ्नी चालित हुई थी; इन प्रमाणों से अधिक बंदूक और तोप की सिद्धि के अर्थ और वृथा प्रमाण देने का प्रयोजन है। यह यथार्थ है कि मुसलमान आ-

क्रमण से पूर्ववर्ती भारतवीर गण प्राचीन युद्ध विद्या को भूल गए थे, क्योंकि यह तो सर्ववादि सम्मत है कि महाभारत का महायुद्ध और बौद्ध गणों के महाविप्लव द्वारा भारत श्मशानप्राय होगया था और इसी कारण परवर्ती मनुष्यगण सब क्रियासिद्ध विद्या भूल गए; उपपत्तिक अंश की (Theoratical) विद्या तो पुस्तक द्वारा ज्ञात हो सकती है परन्तु क्रियासिद्ध (Practical) विद्या बिना क्रियासिद्ध गुरु के नहीं आसक्ती; और उन विप्लवों के कारण इन विद्याओं के क्रियासिद्ध मनुष्यों का लोप हो गया तो उन के साथ ही साथ इस विद्या का भी लोप होना अवश्य सम्भव है। तथापि उपरोक्त विषय को आज कल के पश्चिमी विद्वान्गण भी स्वीकार करते हैं; प्रसिद्ध गङ्गा खाद (नहर गङ्ग) खोदते समय सर-आर्थर कटलि (Sir Arthur cutliy) साहब ने उत्तर पश्चिम प्रदेश में पृथिवी मध्यस्थित एक बृहत् नगर का ध्वंसावशेष पाया था और उस में कई एक तोपें भी मिली थीं; उक्त साहब बहादुर का यह मत है कि वह नगर प्राचीन हस्तिनापुर था, और वे साहब यह भी कहते हैं कि इन तोप द्वारा यह प्रमाण भी होता है कि प्राचीन भारत वासीगण तोप का व्यवहार जानते थे। अनुमान प्रमाण द्वारा प्राचीन भारत में तोप और बन्दूक का होना सिद्ध ही है; परन्तु नवीन यूरोप में भारतवर्ष के प्राचीन रौद्र, अग्नि, वारुण, शक्ति, ब्रह्म आदि महास्त्रों की शक्ति को अभी तक किसी ने हृदयंगम ही नहीं किया है ॥

संगीत विद्या की पूर्णता

तीसरा उपवेद गंधर्ववेद भारत वासियों का सङ्गीत शास्त्र है। आधुनि-

क यूरोप वासी गणों ने इस शास्त्र को केवल खिलर करके जाना है, और इस के द्वारा केवल वैषयिक आनन्द भोग किया करते हैं; परन्तु प्राचीन भारतवासियों की यहविद्या वैसी नहीं थी;इसकी उसकाल में इतनी उन्नति हुई थी कि सङ्गीत शास्त्र एक प्रधान विज्ञान शास्त्र समझा जाता था, और इसका विशेष सम्बन्ध आध्यात्मिक जगत् से रक्खागया था। जहां कुछ क्रिया है वहां अवश्य शब्द होगा। कदापि क्रिया की शक्ति के न्यून होने से उसका शब्द अपने कर्णगोचर न होता हो क्योंकि सूक्ष्मतर विषयों को अपनी इन्द्रियग्रहण नहीं करती; परन्तु जहां क्रिया है, जहां कंपन है वहां किसी न किसी प्रकार का शब्द अवश्य होगा। इस ब्रह्माण्ड की सृष्टि क्रिया भी एक प्रकार का कार्य्य है और समष्टि रूप से उस क्रिया की ध्वनि का नाम प्रणव अर्थात् ओंकार है; शास्त्र में ओंकार के लक्षण लिखे है यथा "तैलधारा मिवाच्छिन्नं दीर्घघण्टानिनादवत्"; और यह ध्वनि योगीगणों को भली भांति स्वतः ही सुनाई देती है। जैसे समष्टिरूप प्रकृति की ध्वनि ओंकार है वैसे ही व्यष्टि रूप नाना प्रकृति के नाना स्वर हैं; और नाना स्वर रूपी नाना प्रकृति के आविर्भाव करने के अर्थ ही संगीत शास्त्र बना है "वेदानां सामवेदोऽस्मि" ऐसे वाक्य द्वारा जो सामवेद की महिमा शास्त्रों ने गाई है सो सङ्गीत शास्त्र की सहायता से ही पढ़ीजाती है; यह सङ्गीत की माधुरी का ही प्रभाव है कि सामवेद और वेदों से मनुष्यों के हृदय को शीघ्रग्रहण करता है। यूरोपीय सङ्गीत विद्या के पक्षपाती होने पर भी जब प्रोफेसर बोयलर (Professr Beler) आदि पश्चिमी सङ्गीत आचार्य्यगणों को भारतवर्षीय राग-रागिनी कौशल की प्रशंसा करते देखते हैं तब यह कहनाही पड़ेगा कि यूरोप के वि

द्वान्‌गण अपनी सङ्गीत विद्या की उन्नति को देखकर मोहित हो रहे हैं। आर्य्य ऋषिकाल में इस सङ्गीत शास्त्र द्वारा षोड़श सहस्र राग रागिनियां गाई जाती थीं और उन के साथ तीनसो छत्तीस ताल बजते थे; इस के देखने से ही बुद्धिमान्‌गण जान सकते हैं कि प्राचीन भारतवर्ष की सङ्गीत विद्या ने जितनी उन्नति की थी यूरोप वासी अभी तक उस को समझ भी नहीं सकते। यह नाना राग रागिनियां नाना प्रकृति के आविर्भाव करने के अर्थ ही बनाई गई थीं; मनुष्य हृदय में जिस प्रकार प्रकृति के आविर्भाव करने की आवश्यकता हुआ करती थी उसी प्रकार के राग रागिनी द्वारा (यथा भैरव राग का रूप वैराग्य मय, हिण्डोल राग का रूप विलास मय है इत्यादि रूपेण) कोई मन्त्र अथवा गान विशेष गाने से उन के हृदय में वैसे ही प्रकृति की स्फूर्ति होने लगती थी।जिस प्रकार युद्धशास्त्र आदि क्रियासिद्ध विद्यायें क्रियासिद्ध आचार्यों के अभाव से लोप हो गई हैं उसी प्रकार प्राचीन मार्ग सङ्गीत (वेदगाने की रीति) और देशी सङ्गीत(ईश्वरसम्बन्धीयध्रुवपद गानेकी रीति)विद्या भी क्रियासिद्ध उपदेशक के अभाव से लोप होगई है। अब जो भारतवर्ष में सङ्गीत विद्या सुनने में आती है वह यथार्थ में प्राचीन सङ्गीतविद्या नहीं है, वह प्राचीन सङ्गीतशास्त्र का जीर्ण कङ्काल मात्र है, अर्थात् यह विद्या वह नवीन विद्या है जो मुसलमान सम्राटों के समय प्राचीन सङ्गीत के अनुकरण पर उत्पन्न हुई थी। इन थोड़े ही विचारों से बुद्धिमान् गण समझ सकते हैं कि पूज्यपाद ऋषिगण प्रणीत सङ्गीत शास्त्र की कैसी गम्भीरता थी और वे कैसे वैज्ञानिकभित्ती पर स्थित थे।

स्थापत्तविद्या की उन्नति

भारतवासियों का चतुर्थ उपवेद स्थापत्तवेद है, स्थापत्तवेद शिल्प शास्त्र और नानावैज्ञानिक विद्या को कहते हैं। यदिच आजकल के उदाहरण पर कपड़े बुनने की कल, दिया सलाई की कल, मैदा पीसने की कल, आदि दीनदुःखीजन दुखदायी कलें भारतवर्ष में नहीं हैं; तत्राच एक समय में भारतवर्ष ने शिल्पविद्या और विज्ञानविद्या में इतनी उन्नति की थी कि जिसकी धारणा अबके लोग नहीं कर सक्ते। यह संसार परस्पर का बन्धन है; मानवगणों में परस्पर की सहायता परस्पर की सहानुभूति परस्पर की एकता और परस्परका पुरुषार्थ दान प्रदान सम्बन्ध ही से मानवजाति का सांसारिक सुख है; यह परस्पर का सम्बन्ध जितना बढ़ेगा उतना ही संसार में सुख बढ़े गा, और जितना घटेगा उतना ही संसार का सुख घटकर दुःख बढ़जायगा। महर्षिगण अपनी दूर दृष्टि द्वारा इस विषय को जानते थे इसकारण ही योग्यता रखने पर भी उस प्रकार के दीन दुःखीजन दुःखदायी विज्ञान चर्चा नहीं करते थे; आजकल इन यन्त्रों की उन्नति से बाह्यतः यदिच सुगमता देख पड़ती है परन्तु मनुष्य गणों का वह पारस्परिक्सम्बन्ध कम होजाने से आन्तरिक दुःख बढ़जाता है; यह विचार केवल अपनी ही कल्पना नहीं है किन्तु आजकल के बड़े बड़े पश्चिमी विद्वान् और भावुकगण सब मुक्तकण्ठ होकर ऐसे दूरदर्शी वाक्य कह रहे हैं। जिस२विद्या की उन्नति द्वारा यथार्थमें मनुष्य जाति की उन्नति होसक्ती है, अर्थात् भूत, भविष्यत्, और वर्तमान इन तीनों कालों में ही समानरूपेण मानवजाति उस कार्य्य फल को भोग कर सक्ती है, उस२ विद्या की उन्नति में ही केवल त्रिकालदर्शी

महर्षियोंने ध्यान दिया था । अङ्कविज्ञान,बीजगणित,दशमिक, संख्या, त्रिकोणमिति यामेति, फलितज्योतिष, गणितज्योतिष, सामुद्रिक, केरल, स्वरोदय, जीवस्वरविज्ञान, कोकशास्त्र, योगविज्ञान, साहित्यविज्ञान विद्युद्विज्ञान, समाजविज्ञान, आदि नाना विद्या की उन्नतिद्वारा त्रिकालदर्शी महर्षिगणोंने संसार के बहुत हीकल्याण साधन बनाये है । बुद्धिमान् जन अपनी साधारण बुद्धिद्वारा ही यह समझ सक्ते हैं कि जो महर्षिगण इस प्रकार के गभीरशास्त्रसमूह के आदि आविष्कार कर्ता हैं वे क्या आजकल की सी लौकिक विद्याओं की सृष्टि नहीं कर सक्तेथे; परन्तु केवल जीवगणों का भविष्य अदृष्ट विचार करके उन्होंने इस प्रकार के ऐहलौकिक स्थापत्त विद्याओं की ओर ध्यान नहीं दिया था । इन उपरोक्त विद्याओं की उन्नति के विषय में यदिच यह प्रत्यक्ष ही है कि इन सर्वविद्याओं में से बहुत एक की उन्नति यूरोप में आजदिन हो रही है;तत्राच बुद्धिमानगणों को यह स्वीकार करना ही पड़ेगा कि इन सबोंके आदि सृष्टिकर्त्ता ही पूजनीय समझे जासकते हैं;एक शास्त्र को प्रथम आविष्कार करना ही कठिन विषय है; तत्पश्चात् पथ मिलजानेपर, स्वरूप निर्णय हो जाने पर, लक्ष्य स्थिर होने पर सब ही उस पथ में अग्रसर होसक्ते हैं; यदिच आजदिन यूरोपवासीगण ज्योतिषशास्त्र को नवीनयन्त्रों की सहायता से विशेष उन्नति के पद पर पहुंचा रहे हैं तत्राच यह स्वीकार करना ही पड़ेगा कि जिन मेधावी मनुष्यों ने आदिकाल में इस ज्योतिष विज्ञान को आविष्कार किया था वे वर्तमान विद्वानों से सहस्रगुण श्रेष्ठत्व पद के अधिकारी हैं ।

अङ्कविद्या की उन्नति

यह तो प्राचीन इतिहास वेत यूरोपीय पण्डितगण स्वीकार ही करते हैं कि बीजगणित, दशमिक, सङ्ख्यानिर्णय, त्रिकोणमिति, यामेति, रेखागणित, गणित, आदि अङ्कविज्ञान के आदिकर्ता भारतवर्ष के महर्षिगण ही हैं। यूरोपीय अध्यापक प्रोफेसर प्लेफेअर (Professr Play foer) साहब नें अपने पुस्तक में लिखा है कि आर्य्य जाति की त्रिकोणमिति शास्त्र बहुत ही प्राचीन है, उन के सूर्य्य सिद्धान्त ग्रन्थ में जिस प्रकार त्रिकोणमिति की क्रियायें लिखी हैं वे ग्रीसदेशवासी अध्यापकों की क्रियाओं से बहुत ही श्रेष्ठ हैं, इन साहब ने और भी लिखा है कि जिस प्रकार भारतवासिओं की त्रिकोणमिति है वैसी विद्या यूरोप के पण्डितगण षोड़श शताब्दी के पाहिले नहीं जानते थे। उन्होंने और भी लिखा है कि सूर्य्य सिद्धान्त ग्रन्थ रचित होने से पहिले यामेती अर्थात् रेखागणित शास्त्र भारतवासीगण सम्पूर्ण रूपेण जानते थे। गणिततत्व का पूर्णप्रमाण ब्रह्मगुप्त आदि आचार्य्यों के ग्रन्थों में भली भांति पाया जाता है; उन प्राचीनग्रन्थों को देख कर यूरोपवासीगण यह एकमत हो के स्वीकार करते हैं कि दशमिक संख्या का आविष्कार भारत से ही हुआ है। आर्य्यभट्ट आदि आचार्य्यों के ग्रंथ से बीजगणित की उन्नति का पूर्णप्रमाण पाया जाता है; पुन डीओ फैन्टस नामक ग्रीस देशीय पण्डित जो कि गत २२६० वर्ष के लगभग वर्त्तमान थे उन के पुस्तक देखने से प्रमाणित होता है कि उन्होंने इनही भारतीय आचार्य्यों के ग्रन्थों की सहायता से ही अपनी विद्या की ऐसी उन्नति की थी। इतिहासों में प्रमाण है कि खालिफ आलमानसर हारु-

नअलरसीद नामक आरबीय सम्राट् जो कि गत १२०० वर्ष के लग-भग वर्त्तमान थे; उन के समय में मुसलमान पण्डित महम्मद विनमूसा आदियों के द्वारा बीजगणित आदि गणितशास्त्र अरबी भाषा में अनुवादित हुआ था । पुनः और भी प्रमाण है कि मुसलमान सम्राटों ने जब स्पेन और पोर्चुगल आदि यूरोपीय देशों में अपना अधिकार जमाया था उस समय उन्होंने भारतीय नाना विद्या सिखाने के अर्थ अपने राज्य में एक बड़ी पाठशाला खोली थी । और भी इतिहासों में कई एक स्थानों में प्रमाण है कि ग्रीक राज्य के और अरब राज्य के कई एक विद्वान्गण अपने अपने समय पर अपने राजाओं की सहायता लेकर भारत भूमि में गणित और ज्योतिष विद्या सीखने को आए थे; और पुनः सीख कर अपने अपने देशों में उन का प्रचार किया था । जब ग्रीस देश का प्राचीन इतिहास ग्रन्थ और अरब देशीय इतिहास ग्रन्थ देखने से यही प्रमाण होता है कि विद्योन्नति समय वहां के पण्डितों ने प्रथम भारत वर्ष की शिष्यता स्वीकार करके बीजगणित, त्रिकोणमिति, रेखागणित और और नाना प्रकार के गणितशास्त्र अध्ययन द्वारा अपने २ राज्यों में उन का विस्तार किया था; पुनः जब यह भी देखते है कि इन विद्याओं का विस्तार यूरोप में उन दोनों जाति द्वारा ही प्रथम हुआ था तो यह मानना ही पड़ेगा कि जगत् में भारत वर्ष ही इन गणितविद्याओं का आदि गुरु है ।

सामुद्रिक आदि गुप्तज्ञानशास्त्र ः

प्राचीनकाल में सामुद्रिक केरल स्वरोदय और जीवस्वरविज्ञान आदि शास्त्रों की उन्नति भारत में विशेषरूपेण हुई थी । अब इतने दिन बाद,

यूरोपवासीगण भारत के इन शास्त्रों को देख देख कर चकित हो कर महिमा प्रचार कर रहे हैं। यदिच अब सामुद्रिकशास्त्र की उन्नति कुछ कुछ यूरोप में देख पड़ती है तथापि यह मानना ही पड़ेगा कि जितनी उन्नति उसकी यहां भूतकाल में हो चुकी है वैसी होने में अभी बहुत विलम्ब है। आजकल यूरोपीय वैज्ञानिकगण और नूतन रीति से मस्तिस्क परीक्षा द्वारा अर्थात् मृतविद्वानगणों के मस्तक को चीर चीर कर परीक्षा द्वारा इस शास्त्र की उन्नति कर रहे हैं; परन्तु त्रिकालदर्शी महर्षिगणों ने स्वतः ही रेखागणना मुखचिन्हगणना आदि जो अति सुगम रीतियां सामुद्रिक शास्त्र में निकाली थीं वह बात अभीतक यूरोप समझ नहीं सका। केरल आदि शास्त्रद्वारा नानाप्रकार के प्रकृति इङ्गित और *जीव स्वरविज्ञान की उन्नति का प्रमाण भली भांति मिलता* है। यदिच प्रकृति में गुणभेद होने के कारण प्रकृति बहुत है, तत्राच वह सर्वव्यापक चैतन्य एक होने के कारण सब वस्तु का सम्बन्ध सब वस्तु के साथ है; जैसे निन्द्रा समय कभी कभी मन एकाग्र होने से भूत, भविष्यत् आदि अद्भुत विषय स्वप्न गोचर हो जाते हैं, बिना किसी कारण आप ही आप भविष्यत् की घटनाओं का हवाल निद्रा अवस्था की साम्यावस्था में दिखाई दिया करते हैं उसी प्रकार जीवों का मन जाग्रत अवस्था में भी प्रकृति इङ्गित (छींक, बाधा, और शकुन आदि) द्वारा भविष्यत् घटनाओं का अनुमान कर सकता है। मन सर्वव्यापक है इस कारण वह जब साम्यावस्था में होजाता है तब वह चाहे निद्रा अवस्था में रहे और चाहे जाग्रत अवस्था में रहे उसका सम्बन्ध दूसरे जीव से होकर अथवा दूसरे पदार्थ पर जाते ही यहीं भविष्यत भाव की स्फूर्ति होजाती है; उन्हीं प्रकृति के भावों को समझने में य-

ह शास्त्र सहायता देता है। योगीराज महर्षि पतञ्जलि जीने अपने योगसूत्र में सिद्ध किया है कि शब्द से अर्थ का ज्ञान, अर्थ से भाव का ज्ञान और भाव से बोध अर्थात् यथार्थ ज्ञान का उदय होता है, इस कारण वाच्यपदार्थ और वाचक शब्द इन दोनों का ही सम्बन्ध है और शब्द से ही शब्दउत्पत्ति कारण भावका पूर्णज्ञान होजाता है। इसी कारण से इसी वैज्ञानिक भित्ती पर महर्षिगणों ने जीवस्वर विज्ञान की सृष्टि की थी कि जिस के द्वारा नाना जीवों की साम्यावस्था की बोली द्वारा वे भविष्यत् गणना कर सकते थे । यदिच अब यूरोप सामुद्रिक और स्वरोदयशास्त्र को कुछ कुछ समझने लगा है तत्राच जीवस्वर विज्ञान अभी वे समझ नहीं सके हैं; किन्तु इस के निकटवर्ती "थाटरीडिंग" नाम से एक नयाविज्ञान आविष्कार कर रहे हैं; जिस के देखने से बुद्धिमानजन गण समझ सकते हैं कि इस शास्त्र उन्नति की पराकाष्ठा अपने आचार्य्यगणप्रणीत जीवस्वर विज्ञान है । मन और वायु एक ही पदार्थ हैं; अर्थात् वायु रूपी प्राण के जानने से मन का ज्ञान हो सकता है, यह वायुज्ञानद्वारा मन ज्ञान की रीति को ही स्वरोदय कहते हैं । स्वरोदयशास्त्र प्रत्यक्षफलप्रद है, इस के पाठ करने से ही बुद्धिमानगण जान सकते हैं कि इस विज्ञान की कितनी उन्नति ऋषिकाल में हुई थी। अंग्रेजी, जर्मन तथा फ्रेंचभाषा में स्वरोदयविज्ञान के कई एक पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं उन के पाठ करने से ही अनुमान हो सकता है कि आजदिन यूरोपवासी स्वरोदयविज्ञान के कितने पक्षपाती हैं। आज-कलके बहुत से यूरोपीय विद्वान् गणों ने इस शास्त्र को देखना आरम्भ कर दिया है; और इस शास्त्र की वैज्ञानिक भित्ती को देख कर प्रशंसा कर रहे हैं ।

साहित्य तथा समाज

साहित्य समाज विज्ञान और कोकशास्त्र आदि सामाजिक शास्त्रों की उन्नति प्राचीन भारत ने जितनी की थी वैसी उन्नति और किसी देश में होना असम्भव ही है । भाषा में जिस जिस प्रकार की शक्ति रहने मे जातीयभाव की पूर्णता सम्पादन हो सकती है आर्य्यजाति की संस्कृत भाषा में वह सब पूर्णरूपेण विद्यमान है । संस्कृत भाषा की जितनी प्रशंसा प्रोफेसर मे नियर विलियम(Professer Monier Willeams)तथा प्रोफेसर वेलसन'Professer Wilson.)इत्यादि विद्वान्गणों ने की है उस के पाठ करने से ही जाना जा सक्ता है कि सच्चे पश्चिमी विद्वान्गण संस्कृत भाषा को किस प्रकार से सर्वोत्तम समझते हैं। यह तो सब विदेशीय पण्डितगण ही एक वाक्य हो कर स्वीकार करते हैं कि संस्कृत भाषा की नाईं मधुर, उन्नत, पूर्ण, संस्कृत, और हृदय ग्राही भाषा और कोई दूसरी नहीं है; पृथिवी की और सब भाषा का नाम भाषा है परन्तु इस भाषा का नाम संस्कृत है; और भाषाओं में परिवर्तन होना सम्भव है परन्तु पूर्ण संस्कारविशिष्टसंस्कृत में कुछ अदल बदल ही नहीं हो सक्ता । भाषा की शक्ति प्रभाव से ही श्रोता और वक्ता इन उभय के हृदय में ही एक प्रकार की शक्ति संचारित हुआ करती है, जो भाषा जितनी उन्नत होगी उस भाषा में यह शक्ति उतनी उन्नत होगी; संस्कृतभाषा में इस शक्ति का पूर्ण विकाश हुआ है; इस में भाषा गत चरित्र शक्ति के प्रभाव से शिशु प्रकृति, स्त्री प्रकृति, और पुरुषप्रकृति, राजसिक प्रकृति और सात्विक प्रकृति सब प्रकृति ही स्वतंत्र और सुचारुरूपेण विकसित होती है । संस्कृत भाषा का अलङ्कार

और व्याकरण जगत् में अतुलनीय है; संस्कृत भाषा की पद्यमय क-विता शक्ति, संस्कृतभाषा की शब्दबाहुल्यता, संस्कृत भाषा कोष की पूर्णता के सन्मुख और सब भाषायें बालकवत् प्रतीत होती हैं इस भाषा में लिखने की प्रणाली भी ऐसी संस्कार प्राप्त और उन्नत है कि बुद्धिमान् जनगण थोड़े ही विचार से जान सकेंगे कि यदि पृ-थिवी भर में कोई सम्पूर्ण लेखनप्रणाली हो तो वह देव नागरी लेखन प्रणाली है; और सब भाषाओं के शब्द इन अक्षरों में लिखे जा स-कते है परन्तु जगत् में ऐसी कोई भी भाषा नहीं है जो संस्कृत शब्द यथावत् लिख सकें। संस्कृत भाषा के पूर्णता के सिवाय एक विशेषता यह है कि यही भाषा जगत् की और सब भाषाओं की जननी रूप है; विशेष प्रशंसनीय विषय यह है कि संस्कृत के आदित्व में किसी देश के पंडित भी सन्देह नहीं करते। भाषा से और समाज से घनिष्ठ संबंध है; जिस जाति की भाषा ऐसी उन्नति को पहुंची थी उस का समाज बन्धन अति उत्तम होगा इस में सन्देह ही क्या है। जीवसमाज का प्रथम बन्धन स्त्री और पुरुष का पारस्परिक संबंध है; उन में परस्पर का कैसा वर्ताव होना उचित है सो कोकशास्त्र में विस्तृतरूपेण वर्णन किया गया है; इस शास्त्र के वात्स्यायन आदि प्रधान आचार्य्य गणों के ग्रन्थ पाठ करने से ही भली भांति जान पड़ेगा कि आर्य्य जाति ने इस विद्या में उन्नति की किस पराकाष्ठा को पहुंचाया था। पुरुष और स्त्री के कि-तने भेद हैं, उन भेदों के क्या क्या लक्षण हैं, कैसे पुरुष से कैसी स्त्री का सम्बन्ध होना उचित है, स्त्री और पुरुष का पारस्परिक सम्बन्ध कैसे निभाने पर यह लोक और परलोक का सुख हो सकता है; कैसे उत्तम संतति उत्पन्न हो सकती है, कैसे एकाधार में धर्म और काम

की प्राप्ति हुआ करती है इत्यादि नाना गभीर विचारों का ज्ञान इस शास्त्र से होता है। यद्यपि नवीन यूरोप आज दिन बहिर् जगत् की उन्नति को धारण कर रहा है, और अपने बराबर किसी को भी नहीं समझता है, तथापि जर्मनी, अमेरिका, इङ्गलेन्ड, और फ्रांस आदि देशों के विद्वान्‌गण महर्षि वात्स्यायन आदि के ग्रन्थों को देख कर मोहित हो रहे हैं। *समाज गठन सम्बन्ध में आर्य्यजाति ने जितनी उन्नति की थी* आज दिन तक पृथिवी के कोई जाति ने भी वैसा नहीं किया। नदी स्रोत के अनुकूल यदि वायु भी प्रवाहित हो तो नौका जितनी शीघ्र गन्तव्य स्थानपर पहुंच सकती है उतनी शीघ्र और किसी उपाय से नहीं पहुंच सकती; भारत की दिव्य और पूर्ण प्रकृति से एकतो भारत वासियों की प्रकृति पूर्ण ही हो सकती है, और दूसरे आर्य्यगणों का तप और योगयुक्तबुद्धिद्वारा दोनों अनुकूलता एक साथ मिल कर भारत वासियों की सामाजिकता, भारतवासियों की मनुष्यता को पूर्ण अवस्था में पहुंचा दिया था; और इसी कारण आर्य्यसमाज पद्धति मानवजाति को पूर्णताको पहुंचा देने के उपयोगी ही बनीथी आर्य्य-जाति का सदाचार, आर्य्यजाति की चतुर्वर्ण विधि, आर्य्यजाति की आश्रमचतुष्टय की व्यवस्था आर्य्यजाति की शिक्षा और दीक्षाकौशल, आर्य्यजाति की पितृमातृ भक्ति, भ्रातृप्रेम, पतिपूजा, स्त्रीप्रीति, वात्सल्यस्नेह, अतिथि सेवा, और जीवरक्षा आदि सद्गुण और आर्य्यजाति का अपूर्व धर्म्म साधन विज्ञान आदि से ही आर्य्यसमाज कौशल की श्रेष्ठता प्रतिपादन हो रहा है। यह प्राचीन भारत की समाजविज्ञान का ही फल था कि यहां के ब्राह्मणगण ज्ञान की इतनी उन्नत अवस्था में पहुंचे थे कि जिन की शिष्यता को स्वीकार करके आज दिन जगत्

की और और जातियां ज्ञानराज्य में विचरण कर रही हैं,यह प्राचीन भारतका समाजविज्ञान का ही फल था कि भारत में श्रीरामचन्द्रऔर भीम अर्जुन आदि के समान योद्धागणों ने उत्पन्नहो कर लक्षों वर्षतक समस्त पृथिवी पर अपना अधिकार फैला रक्खा था;यह प्राचीनभारत का समाज विज्ञान काही फल था कि जिस से भारत के वैश्यों का व्यापार और शूद्रों का शिल्प की उन्नति द्वारा पृथिवी में सर्वश्रेष्ठराम समझा जाता था, वहिर्देशों से उन का व्यापार इतना बढ़ाहुआ था, व्यापार के कारण समुद्र में इत ने पोत (जहाज) चलते थे कि एक प्रकार समुद्र मन्थन कर डालते थे, इसी का रूपक यह हुआ कि देवता और असुरोंने समुद्र का मन्थन किया तब समुद्र से लक्ष्मी मिली। आजकल के नवीनवैज्ञानिक गण मुक्तकण्ठ हो कर इस विषय को स्वीकार कर रहे हैं कि यह भारत का समाज बन्धन, वर्ण विभाग और विवाह पद्धति (यथा स्वगोत्रा कन्या के साथ विवाह न करना पात्र का वयक्रम पात्री की वयक्रम से न्यून न होना, असवर्ण विवाह न करना, धर्म्म रीति से ही स्त्री गमन करना इत्यादि) का ही कारण है कि बहुकाल की आर्य्यजाति अभीतक ठहर रही है। प्राचीन ग्रीसजाति, इजिप्सियनजाति , व्यबिलोनियनजाति, और रोमनजाति आदि अनेक प्रतापशाली जातियें का नाम इतिहास में पाया जाता है, परन्तु आज दिन उनका नाम ही नाम है और चिन्ह तक लोप होगया है; थोड़े थोड़े विप्लव से ही इस संसार से इन जातियों का लोप होगया है; परन्तु यह आदि आर्य्य जाति की समाज बन्धन का ही कारण है कि अगणित महाविप्लवों को सह कर भी यह जाति अमर हो रही है। यह आर्य्यजाति की समाज विज्ञान काही फल है

कि जिस से इस भूमि में श्री रामचन्द्र से राजा, श्रीमान् जनक से स-द्गृहस्थ, सीतादेवी और सावित्रीसी कुल कामिनी, ध्रुव से बालक, म-हर्षि वेदव्यास से ग्रन्थरचयिता, राजर्षि मनु से वक्ता, श्रीकृष्ण से उ-पदेष्टा, सिद्धवर कपिल से साधक, परमहंस शुकदेव से ज्ञानी उत्पन्न हुए थे ॥

ताडित विज्ञान एवंयोगशक्ति ॥

ऋषिकाल में ताडित विज्ञान और योग विज्ञान की जितनी उ-न्नति हुई थी वह आज कल के लोग यदि विचार करने लगें तो त-न्द्रावस्था में स्वप्न केनाई अनुभव होने लगता है; उन्नतिशील पश्चि-मी विद्वान् गण उस को यदिच स्वीकार करते जाते हैं तथापि कारण अन्वेषण करते समय अब भी मोहित हुआ करते हैं । प्राचीन आर्य्य जाति के भोजन में, शयन में, बैठने में, चलने में, जल में, स्थल में, और धर्म्म, अर्थ, काम, मोक्ष कारक सब कर्म्मों मे ही ताडितविज्ञान का अ-द्भुत सम्बन्ध देखपड़ता है । महाबली रावण ने जो दुर्जय शक्ति शे-लद्वारा सुमित्रानन्दन को जड की नाई स्पंदन रहित कर दिया था सो ताडित विज्ञान की उन्नति का ही प्रमाण है बाणों में विद्युत् शक्ति डा-लने की क्रिया अभी तक यूरोप के विद्वान्गण आविष्कार नहीं कर स-के हैं; नागपाश, शक्तिशेल, सन्मोहन अस्त्र, आदि जितने चमत्कार शक्तियुक्त अस्त्र आर्य्यगण युद्धार्थ बनाया करते थे वे सब ताडित विज्ञान के सहायता से ही निर्माण करते थे । देवमन्दिर के ऊपर अ-ष्टधाती चक्र अथवा त्रिशूल आदि लगाने की जो विधि है वह विद्यु-त्विज्ञान की उन्नति का ही चिन्ह है । उत्तर की ओर सिर कर के

न सोना, नवीन अपक्व फल की ओर उँगली न उठाना, नीच जाति का स्पर्शित अन्न भोजन न करना, चैल, अजिन, कुश, और कम्बल आसन पर बैठ कर उपासना करना, सौभाग्यवती स्त्रियों को स्वर्णमय अलङ्कार आदि धारण करने की आज्ञा देना, और विधवाओं को न देना आदि सब नियम ही इस ताडितविज्ञान उन्नति के प्रमाण हैं। आजकल की विज्ञानदृष्टि में यह प्रमाण ही हो चुका है कि अष्टधातु वज्रपात को निवारण करता है इस कारण मन्दिरों पर वह स्थापन किया जाता है; उसी प्रकार उत्तर सिरा होकर सोने से कुस्वप्न देखने की सम्भावना है; क्योंकि स्वाभाविक ताडितप्रवाह दक्षिण से उत्तर की ओर प्रवाहित है इस कारण उस रीति पर सोने से शोणित की गति पद की ओर से मस्तक की ओर अधिकरूपेण हो सकी है। उसी कारण शारीरिक ताडित द्वारा अपक्वफल तब ही दूषित हो जायगा जब उस की ओर उंगली उठाई जायगी; उसी कारण शूद्र में तमोगुण अधिक होने के कारण उस का छुआ हुआ, अन्न भी उस की दूषित ताडितद्वारा दोषयुक्त हो जाने पर श्रेष्ठ ताडित ब्राह्मण देह के लिये अहितकारी ही है। पृथिवी सदा जीव शरीर अन्तरगत ताडित को खेंचा करती है, उपासना करते समय मनुष्य शरीर में सात्विक ताडित का बढ़ना सम्भव है; परन्तु पृथिवी पर बैठ कर उपासना करते समय वह ताडितसंग्रह पृथिवी द्वारा नाश को प्राप्त हो सकता है, किन्तु चैल, अजिन, कुश, और कम्बल में ताडित ग्रहण करने की शक्ति नहीं है (वे Nonconduiter हैं) इस कारण उन पर बैठकर साधन करने से वह क्षति नहीं होगी। और उसी कारण सुवर्ण आदि धातु ताडित शक्ति वृद्धि कारक हैं, ताडितशक्ति वृद्धि से

शारीरिक इन्द्रियों की विशेष स्फूर्ति होती है, इन्द्रियों की विशेष स्फूर्ति होने से श्रीमान् सुसंतान उत्पन्न कर सकती हैं; इस कारण ही आर्य्य सदाचार ने सद्रूपास्त्रियों को अलंकार धारण करने की और विधवा स्त्रियों को अलंकार धारण नहीं करने की आज्ञा दी है । ताडित विज्ञान पूर्ण इन आचारों को सुनकर साधारण बुद्धियुक्त मनुष्य भी समझ सक्ते हैं कि प्राचीन आर्य्यगणों नें इस सूक्ष्म विज्ञान को किस उन्नत अवस्था में पहुंचा दिया था । योगविज्ञान की मुक्ति सहायकारी जो शक्ति है सो तो विलक्षण ही है परन्तु इस विज्ञान की और भी भौतिक शक्तियों की अद्भुतता अब जगत् में प्रसिद्ध ही हो रही है योग शक्ति द्वारा मेघ वायु आदि स्तम्भन करना,शून्यमार्गसे विचरणकरना शरीरको लघु अथवा भारी कर लेना;प्रस्तर अथवा मृत्तिका आदि पदार्थ में प्रवेश करना, दूरस्थित विषय को सुनना अथवा देखना दीर्घ आयु और इच्छा मृत्यु होना, क्षुधा पिपासा जय करना, और औरनाना ग्रह उपग्रहों में संयम करके अथवा भविष्यत् प्रारब्ध में संयम करके उन के विषयों को जान लेना आदि नाना ऐसी विभूतियों की प्राप्ति हो सक्ती है; इस प्रकार की शक्ति जीव में कैसे प्राप्ति हो जाती है उस का प्रमाण वेद और नाना योग सम्बन्धीय शास्त्र दे रहे हैं । डाक्टर पाल(Dr. Paul.) साहब ने अपने योगविज्ञान नामक पुस्तक में वैज्ञानिक युक्ति द्वारा पूर्णरूपेण प्रमाणित कर दिखाया है कि प्राणायाम साधन द्वारा किस प्रकार से योगीगण दीर्घआयु तथा भूत जय कर सक्ते हैं; इस प्रकार से उक्त पश्चिमी पण्डित महाशय ने अष्टाङ्ग योग की बहुत ही प्रशंसा करके योग के आठों अङ्गों की योग्यता और अद्भुत अलौकिक शक्तियों का वर्णन अपने पुस्तक में किया है। प्रत्यक्ष प्रमा-

श में सन्देह हो ही नहीं सक्ता; जब यूरोपवासी विद्वान्‌गणों ने प्रत्यक्ष दृष्टि से पञ्जाब केशरी महाराजा रणजीतसिंह की सभा में योगीवर हरिदास स्वामी को छः मास तक पृथिवी के अन्तरगत जड़ समाधि अवस्था में रहते हुए देखा, जब उन्हों ने देखा कि एक जीवित मनुष्य को पृथिवी खनन करके गाड़ दिया गया और उस के ऊपर की मृत्तिका पर जब वपन करके पहरे बिठा दिये गये, पुनः जब उनको छः महीने पूरे होने पर निकाला गया तो वे जीवित ही मिले; तब उन विद्वानों के हृदय में और कहां से सन्देह रहेगा। वे विद्वान्‌गण उसी प्रकार मदरास के योगी को कुम्भकद्वारा आकाश में स्थित देखकर और कलकत्ते के भूकैलास स्थित योगी को श्वास रहित समाधिअवस्था में देख कर अतीव मोहित हुए। इन तीनों उदाहरणों को प्रमाण रूपेण उन्हों ने अपने अपने पुस्तकों में भी लिखा है। यदिच उन्हों ने प्रत्यक्ष भी कर लिया है तत्राच योग शक्ति का कारण अभी तक वे अन्वेषण नहीं कर सके हैं; योग क्रिया में जो बालक हैं ऐसे पुरुषों की भांति, नलक्रिया, और शङ्खप्रचाल, आदि क्षुद्र क्रियायें जो आजकल सचराचर देखने में आती हैं पश्चिमी विद्वान्‌गण वैज्ञानिक बुद्धि द्वारा अभी तक इन क्रियाओं तक का कारण नहीं जान सके।

ज्योतिष शास्त्र उन्नति

गणित ज्योतिष और फलित ज्योतिष इन दोनों शास्त्रों का आविष्कार आदिकाल में इस भारत भूमि से ही हुआ है; और केवल विद्याओं का आविष्कार ही नहीं हुआ था किन्तु इन के प्रत्येक विभाग इतनी उन्नति को पहुंचे थे कि जिन सब विभागों को अभी तक पश्चिमी वैज्ञा-

निकगण समझ ही नहीं सके हैं। यदिच उन्हों ने आज कल यन्त्रों की सहायता से गणितज्योतिष की कुछ उन्नति की है तत्राच फलित की सूक्ष्मता को वे अभी तक पहुँच ही नहीं सके हैं। प्राचीन काल में ज्योतिषशास्त्र की पूर्ण उन्नति नहीं हुई थी ऐसा कोई कोई एकदेशदर्शी भावुकगण प्रमाण किया करते हैं, परन्तु आर्य्य शास्त्र न देखने से ही वे ऐसा कहा करते हैं। ग्रह, नक्षत्र, राशीचक्र, नक्षत्रचक्र, अंश, निपुबरेखा, गोलकार्ध, उदीचीन राशी आदि राशी भेद, क्रान्ति, केन्द्रव्यासनिरूपण, सुमेरु, कुमेरु, छायापथ, ग्रह, उपग्रह, कक्ष, धूमकेतु, उल्कापिंड, निर्घात, मध्याकर्षणशक्ति, सूर्य्यमहासूर्य्यआदिभेद, पृथिवी, आदि की आकृति, ग्रहणनिर्णय आदि सकल गभीर विषयों का सिद्धान्त जब प्राचीन आर्य्यों के ग्रन्थों में देखते हैं तब कैसे कहेंगे कि उन्होंने इस शास्त्र की पूर्ण उन्नति नहीं की थी। विष्णुपुराण में लिखा है कि "स्थालस्थिमग्निसंयोगा दुद्रेकि सलिलंयथा। तथेन्दु वृद्धौ सलिलमम्भोधौ मुनिसत्तमाः॥ न न्यूना नातिरिक्ताश्च वर्द्धन्त्यपोह्रसन्तिच। उदयास्तमनेष्विन्दोः पक्षयोः शुक्लकृष्णयोः॥ देशोत्तराणि पञ्चैव अङ्गुलानां शतानिवै। अपां वृद्धिक्षयौदृष्टौ सामुद्रीणां महामुने॥ अर्थात् जवार भाटा से यथार्थ में समुद्रका जल ह्रास और वृद्धि को प्राप्त नहीं होता है, परन्तु स्थाली में जल रख कर वह अग्निपर रखने से जैसे अग्निउत्तापद्वारा जल में उफान आने से वह जल वृद्धि को प्राप्त हो जाता है, वैसे ही शुक्ल और कृष्ण पक्ष की चन्द्रकला द्वारा आकृष्ट हो कर समुद्रजल ह्रास वृद्धि को प्राप्त हुआ करता है। आर्य्यग्रन्थों में ऐसे प्रमाण देखने से किस को विश्वास न होगा कि आर्य्य गणों को ग्रह आकर्षण शक्ति और जवारभाटा का कारण ज्ञात न था। वार और तिथी आदि-

को आर्य्य महर्षिगणों ने ही प्रथम आविष्कार करके समय की शृङ्खला की थी; सालभर में कौन से दिन दिवा रात्रि समान होता है वह यूरोपीय पण्डित टोलेमी (P. tolemy जिस को यूरोपजाति इस नियम के आविष्कर्त्ता मानते हैं) के जन्म लेने से बहुत काल पूर्व ही प्राचीन आर्य्य आचार्य्यगण द्वारा निरूपित हो चुका था। सूर्यसिद्धान्त ग्रन्थ में लेख है कि, "सर्वतः पर्वतारामग्रामचैत्यचयैश्चितः । कदम्बः केशरग्रन्थिकेशरप्रसवैरिव" ॥ अर्थात् कदम्ब जिस प्रकार केशर समूह द्वारा वेष्टित होता है उसी प्रकार पृथिवी भी ग्राममें वृक्ष पर्वत आदि द्वारा वेष्टित है। नक्षत्र कल्प में लेख है कि, 'कपित्थफलवद्विश्वं दक्षिणोत्तरयोः समं"। अर्थात् कपित्थ फलके नाई पृथिवी गोलाकार है, परन्तु केवल उत्तर और दक्षिण में कुछ समान अर्थात् दबी हुई है। जब पश्चिमी विद्वान् गण पृथिवी को नारंगी के साथ उपमा देते हैं; तब आर्य्यगणों को कदम्ब और कपित्थ के साथ उस की उपमा देने से क्या विद्वान् गण नहीं समझ सकेंगे कि प्राचीन आर्य्यगण पृथिवी के स्वरूप के पश्चिमी वैज्ञानिक गणों से पूर्व ही भली भांति जानते थे। आजकल विद्यार्थियों के शिक्षाके अर्थ गोलक प्रस्तुत (Globe) किया जाता है; परन्तु जब प्राचीन आर्य्य ग्रन्थों में देखते हैं कि वे भी शिष्यों को दारुमय खगोल और भूगोल रचना द्वारा शिक्षा दिया करते थे,तब कौन बुद्धिमान् नहीं विश्वास करेंगे कि वे भी इस नवीन रीतिको भलीभांति जानते थे। आज कल की शिक्षा में प्रधान दोष यह है कि भारत वासीगण पूर्णशिक्षाको प्राप्त नहीं होते, चाहे पश्चिमी अंग्रेजी भाषा चाहे संस्कृत विद्या किसी में परिश्रम करते हों परन्तु पूर्ण परिश्रम नहीं करते; द्वितीयतः अपने वर्त्तमान भ्रमों के दूर करने के अर्थ दोनों शास्त्रों का भली भांति संग्रह कर के तत्पश्चात्

दोनों के गुणों को परस्पर विचारद्वारा सत्य का अन्वेषण करें तभी सत्य का अनुसंधानकर सकेंगे; नहीं तो एक विद्या को ही असम्पूर्ण जान कर सत्य अनुसन्धान करना विडंवनामात्र होगा इस में सन्देह नहीं आर्य्य-भट्टजी ने लिखा है कि, "चलापृथ्वी स्थिराभाति" अर्थात् पृथिवी चलती है परन्तु ठहरी हुई अनुभव होती है; पुनः आर्षग्रन्थों में लेख है कि, भपंजरः स्थिरोभूरेवावृत्यावृत्य प्रातिदैवसिकौ। उदयास्तमयौ सम्पादयति नक्षत्र ग्रहाणाम् ॥ अर्थात् नक्षत्र मंडल राशिचक्र स्थिर हो रहे हैं परन्तु पृथिवी बारंबार घूमती हुई ग्रह नक्षत्रों का दैनिक उदय अस्त सम्पादन किया करती है; इन लेखों को देखने से कौन नहीं विश्वास करेगा कि प्राचीन आर्य्यगण पृथिवी की गति को नहीं जानते थे। जब आचार्य्यों के ग्रन्थों में देखते हैं कि "भूगोलो व्योम्नि तिष्ठति" अर्थात् पृथिवी शून्य में ही स्थित है, पुनः जब भास्कराचार्य्य को कहते हुए देखते हैं कि, "नान्याधारं स्वशक्त्या वियति च नियतं तिष्ठतीहास्य पृष्ठे। निष्ठद् विश्वंच शश्वत् सदनुजमनुजादित्यदैत्यं समंतात्" ॥ अर्थात् पृथिवी बिना आधार के ही अपनी शक्ति द्वारा आकाश मण्डल में स्थित है, और उसके पृष्ठ पर चारों ओर देवदानव मानव आदि निवास कर रहे हैं; तब कैसे विश्वास नहीं करेंगे कि वे पृथिवी की स्थिति को भली भांति नहीं जानते थे। जब ब्रह्मपुराण में देखते हैं कि "पर्वकालेतु सम्प्राप्ते चन्द्रार्कौछादयिष्यति। भूमिच्छायागतश्चन्द्रश्चन्द्रगोऽर्क कदाचन" ॥ अर्थात् पूर्णिमा आदि पर्व दिन में तुम चन्द्र सूर्य्य को आच्छादन करोगे, पुनः ज्योतिष आचार्य्यों के ग्रन्थ में देखते हैं कि, "छादको भास्करस्येन्दुरधःस्थो घनवद्भवेत्। भूच्छायां प्राङ्मुखश्चन्द्रो विशत्यस्यभवेदसौ" ॥ अर्थात् मेघकी नाई चन्द्र सूर्य्य के अ-

धस्य हो कर सूर्य्य को आच्छादित करता है, और चन्द्रभूच्छाया में प्रवेश करता है; तब कौन बुद्धिमान् गण नहीं जान सकते हैं कि प्राचीन भारत बासीगण ग्रहण विज्ञान को भली भांति नहीं जानते थे। इस प्रकार से ज्योतिषशास्त्र की उन्नति के विषय में जितना विचार करेंगे उतना ही सिद्धान्त दृढ़ होता जायगा कि इस गंभीर विज्ञान शास्त्र में प्राचीन भारत ने बहुत ही उन्नति की थी। बिना गणित ज्योतिष के फलित ज्योतिष कार्य्यकारी नहीं होता इस कारण भारत का फलित शास्त्र ही गणित शास्त्र की उन्नति का प्रमाण है। आज कल के यूरोपीय सम्बादों का पाठ करने से बुद्धिमानमात्र ही जान सकेंगे कि आज दिन यूरोप वासी किस प्रकार से मेटी ओरोलोजी (Meteorolojy.) विद्या पर से अपनी दृष्टि हटा कर फलित ज्योतिष की सत्यता की ओर दृढ़ करते जाते हैं। आज दिन यूरोप का यह फलित ज्योतिष का पक्षपात ही हमारे इस गणित एवम् फलित ज्योतिष विषयक सिद्धान्त को पूर्णरूपेण दृढ़ कर रहा है।

पुराणों की अद्भुतता

यह यथार्थ ही है कि पुराणों के वर्णन में कहीं कहीं वैज्ञानिक प्रमाण विरुद्धता पाई जाती है; परन्तु पुराण का यथार्थ स्वरूप जानने पर वह पौराणिकरूपक से बुद्धिमानों को कोई भी हानि नहीं पहुंचा सकती। पूज्यपादमहर्षिगण पूर्व्व ही पुराण संहिता में कह चुके हैं कि पुराण में तीन प्रकार की भाषा हुआ करती है, यथा समाधिभाषा, परकीयभाषा, और लौकिकभाषा, समाधिभाषा उसे कहते हैं कि जो आचार्य्य गणों ने समाधिस्थ हो अनुभव कर लोकोपकारार्थ पुराणों में प्रकाश किया

है। समाधि में किसी दृश्य पदार्थ का तो अनुभव किया ही नहीं जाता है; परब्रह्म, ईश्वर, जीव, सृष्टि, स्थिति, लय, और कर्म्म विवरण, येही विषय समाधि गम्य हैं, इनहीं विषयों का विवरण पुराणों के जिन जिन स्थानों पर आवे उनहीं को समाधिभाषा कहते हैं। परकीय भाषा उसे कहते हैं कि जो विषय आचार्य्य गणों ने औरों से सुनकर लोकरञ्जनार्थ अथवा समाज के उपकारार्थ पुराण में वर्णन किया हो। जहां परकीय भाषा आती है वहां प्रायः ऐसा लेख होता है कि " अमुक ने ऐसा कहाथा" जहां इस प्रकार की सुनी हुई बात का कथन हो उसी को परकीयभाषा समझना उचित है लौकिक भाषा उसे समझना चाहिये कि जहां लौकिक रीति के अनुसार कोई प्रसंग का वर्णन हो, और ग्रन्थ के मूल आशय से उसका विशेष सम्बन्ध न हो जैसे श्री भागवत में वर्णन है कि " जब श्री भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र जी के सत्संग करते करते रात व्यतीत होगई और कुक्कुट पक्षी बोलने लगे तब गोपिनी गणों ने व्यथित हो उन पक्षियों का तिरस्कार किया, इत्यादि; " इस प्रकार की रञ्जिनभाषा जहां आवे उसको लौकिकभाषा कहना उचित है। इन तीन प्रकार की भाषाओं में से समाधिभाषाको सत्यरूपमय अभ्रान्त, और लौकिक और परकीयभाषा को अतिरञ्जित और रूपकमय कहा है। आचार्य्यगणों ने तो सब कुछ ही स्पष्टरूपेण कह दिया है, परन्तु जो कुछ फेर पड़ता है वह अल्पज्ञ जीव की बुद्धि से ही पड़ता है वैज्ञानिक सिद्धान्त तो यथार्थ में सत्य और अभ्रान्त ही है; परन्तु लोक शिक्षार्थ यदि आवश्यक समझ कर महर्षि गणों ने उनको रूपकरूपेण अतिरञ्जित कर के कहीं कहीं प्रकाश किया हो तो उस से मूलविज्ञान में कोई भी दोष स्पर्श नहीं करेगा; जो जैसा अधिका-

री है वह वैसा ही समझेगा । इस प्रकार से सनातनधर्म शास्त्रोक्त नाना ग्रन्थों में तीन प्रकार की भाषायें देखने में आती हैं, यहां तक कि वेद में भी उपाख्यान आदि दृष्टिगोचर हुआ करते हैं । इस प्रकार की विभिन्नभाषा केवल विचार की दृढ़ता कराने तथा अधिकार के अनुसार नाना भाव विकाश के अर्थ ही हैं,इन को देखकर यदि च प्रथम दृष्टि में धोखा हो सकता है,परन्तु सूक्ष्म विचार द्वारा दृष्टि पात करने से अपने प्राचीन शास्त्रों में कहीं कुछ भी विरोध नहीं प्रतीत होता ।

वैज्ञानिक ज्ञान का प्राचीनत्व ॥

पाश्चिमी विद्वान्गण यह कहते हैं कि मध्याकर्षण शक्ति का आविष्कार करने वाले न्यूटन (Newton) साहब हैं । परन्तु जब देखते हैं कि श्रीमद्भागवत में श्रीभगवान् श्रीकृष्णचन्द्र के उपदेश में पृथिवी की मध्याकर्षण शक्ति का विस्तृत विवरण आया है; जब देखते हैं कि भास्कराचार्य्य जी ने लिखा है कि, "आकृष्ट शक्तिश्च मही तया यत् खस्थंगुरुः स्वाभिमुखं स्वशक्त्या। आकृष्यते तत् पततीति भाति समे समंतात् क्वपतत्वियं खे" अर्थात् पृथिवी आकर्षण शक्ति विशिष्टा है क्योंकि कोई भारी पदार्थ आकाश की ओर निक्षिप्त करने पर पृथिवी अपनी शक्तिद्वारा उस को आकर्षण करलेती है, आकाशचारों ओर ही है परन्तु वह पृथिवीके ऊपरही गिरताहै । पुनः जबदेखते हैं कि आर्य्यभट्ट कहरहे हैं कि 'आकृष्टशक्तिश्च मही यत्तया प्रक्षिप्यते तत्तया धार्य्यते" अर्थात् पृथिवी आकर्षण शक्ति विशिष्ट है क्योंकि जो वस्तु फेंकी जाती है आकर्षण शक्ति द्वारा ही पृथिवी उस को धारण कर लेती है; तब कैसे कहेंगे कि न्यूटन साहब इस वैज्ञानिक नियम के आ-

विष्कर्त्ता हैं;जब न्यूटन साहबके जन्म ग्रहण करने से सहस्र सहस्र व-त्सर पूर्व्व के ग्रन्थों में उस विज्ञान का प्रमाण मिल रहा है तब कैसे मानेंगे कि वह नियम भारत से नहीं निकला किन्तु यूरोप से निकला है। यूरोप के प्रसिद्ध विद्वान् बेली (Bailly) साहब, प्रेफेयर (Plo. yfair) साहब और केसेनी (Cassini.) साहब आदि बड़े बड़े महामहोपाध्याय गण मुक्तकण्ठ हो कर स्वीकार करते हैं कि पांच सहस्र वर्ष के पूर्व भारतवर्ष में जो ज्योतिष ग्रन्थ लिखे गये थे वे अब भी मिला करते हैं; भारत वर्ष ही ज्योतिष शास्त्र का आविष्कार कर्त्ता है। वर्त्तमान काल के प्रसिद्ध ज्योतिष शास्त्र अध्यापक कोलब्रुक (Cole-brooke) साहब प्रमाण के सहित लिखते हैं कि अतिप्राचीन काल में *ज्योतिष गणना का प्रधान सहायक पृथिवी की अयनांशगति अथवा क्रांतिपात की वक्रगति* (Preiession of the Equinones) को भा-रत वर्ष के विद्वान्गणों ने ही आविष्कार किया था। अब थोड़े ही दिन हुए यूरोपवासी गणों ने नानायन्त्रों की सहायता से सूर्य्य कलङ्क का (Lalor spots) अनुमान किया है, और वे ऐसा कहते हैं कि यह उन का नूतन आविष्कार है; परन्तु आर्य्यशास्त्रों को देखने से अतिसु-गमता द्वारा ही यह भ्रमदूर हो सकता है। विष्णुमार्कण्डेय आदि पुराणों और वराहमिहिर आदि की ज्योतिष संहिताओं में इसका वि-शेष विवरण पाया जाता है; पुराणों में लेख है कि विश्वकर्म्मा ने जब *अपने भ्रमीनामक यन्त्र को सूर्य्यमण्डल में प्रयोग किया था तो वह अस्त्र* सूर्य्य मण्डल के जिस २ अंश में स्पर्श हुआ वही वह अंश श्यामिका को प्राप्त होगया था और वही वह अंश को सूर्य्य कलङ्क कहते हैं। प्राचीन आर्य्य जाति ही इस शास्त्र के प्रधान गुरु हैं ऐसा एक देशदर्शी

मुसलमानगण भी स्वीकार करते हैं, आरबीय "त्वारिकल हुक्मा" और "खुलाश तुल हिसाब" आदि ग्रन्थों में इस विचार का भली भांति प्रमाण मिल सकता है, उन्होंने अपने अपने ग्रन्थों में आर्य्य भट्ट का नाम "आज्यभर" और भास्कराचार्य्य का नाम "बासर" करके लिखा है। इन उपरोक्त विचारों से यह सिद्ध ही होता है कि इस प्रकार के गभीर वैज्ञानिक तत्व तथा वैज्ञानिक शास्त्रों का आदि गुरु भारतवर्ष ही है, और भारत की इस श्रेष्ठता को ईसाई तथा मुसलमान दोनों सम्प्रदाय ही स्वीकार करते हैं; यह मत सर्ववादि सम्मत है ग्रीक भाषा के ग्रन्थ, रोमन भाषा के ग्रन्थ, अरबीभाषा के ग्रन्थ तथा नाना यूरोपीय भाषा के ग्रन्थों से जब यही सिद्ध होता है कि प्राचीन आर्य्य जाति ही सकल मनुष्य जातियों से पहिले अपनी भारत भूमि में शिल्पनैपुण्य, तथा वैज्ञानिक सिद्धान्तों की प्रकाश कर्त्रीथी, जब प्राचीन महर्षि गणों के नाना ग्रन्थों में ज्योतिष विज्ञान, ताडित विज्ञान, रसायन विज्ञान, भूतत्व विज्ञान चिकित्साविज्ञान और अतुलनीय योग आदि धर्म्म विज्ञान वर्णन देखते हैं तब निरपेक्ष विद्वान् गण मात्र ही स्वीकार करेंगे कि प्राचीन भारत ही विज्ञान उन्नति का आदि गुरु है।

सृष्टि के प्राचीनत्व पर भारत का मत

बाइबिल और कुरान विश्वासकारी गण यही विश्वास करते हैं कि पृथिवी की सृष्टि केवल तीन सहस्र वर्ष के लगभग हुई है, उन के विचार में मानव जाति की उत्पत्ति इस समय के अन्तर्गत ही है। परन्तु आर्य्यशास्त्र पृथिवी सृष्टि को और विलक्षणरूप से ही वर्णन

किया करते हैं, और उसकी बहुत ही प्राचीनता सिद्ध किया करते हैं। आर्य्य शास्त्रों में लेख है कि मनुष्यगणों के छःमास का एक अयन कहाता है, दो अयन का एक वर्ष होता है; ऐसे मानवगणों का एक वर्ष एकदैवअहोरात्रि के तुल्य है। इस प्रकार के दैव अहोरात्रि से दैव सम्वत्सर भी समझना उचित है; ऐसे द्वादस सहस्र दैव वर्ष से एक महायुग होता है, एक सहस्र महायुग से एक ब्रह्मा का अहोरात्र होता है, ऐसे ब्रह्मा का एक अहोरात्र ही एक कल्प कहाता है। कहीं कहीं ऐसा भी लेख है कि ७१ दैव युग का एक इन्द्रपतन, १.४ इन्द्रपतन का एक मन्वन्तर; अर्थात् ७१ महायुग का एक मनुःपतन, और १४ मन्वन्तर का एक ब्राह्म अहोरात्र हुआ करता है ऐसे एक एक ब्राह्म अहोरात्र अर्थात् एकएक कल्प मेंएक एक ब्राह्म प्रलय हो जाता है; ब्रह्मा जी अपने अहोरात्र के दिवा भाग में सृष्टि रच कर रात्रि भाग में निद्रित हो जातेहैं; पुनः निद्रा से उठ कर देखते हैं कि इस अवस्था में सृष्टि का प्रलय हो गया है; तो पुनः वे सृष्टि किया आरम्भ करदेते हैं। इस रीति पर ब्रह्माकेएक अहोरात्र को एक मानव महाकल्प भी कहते हैं। ३९५ ब्राह्म अहोरात्र का एक ब्राह्म सम्वत्सर; १०० ब्राह्म वर्ष का एक ब्राह्मपतन; अर्थात् ५० ब्राह्म वर्ष का एक परार्द्ध, और दो परार्ध का एक ब्राह्म शताब्दि हुआ करता है। ऐसे १०० वर्ष की आयु के अनन्तर ब्रह्मा का लय हो जाता है; ब्रह्मा जी के लय से जो महाप्रलय होता है उस को प्राकृत प्रलय भी कहते हैं। पूर्व्व लिखित ब्रह्मा जी की आयु का प्रथम परार्द्ध हो चुका है, अब द्वितीय परार्द्ध का प्रथम दिवस अर्थात् प्रथम कल्प चलरहा है; जिस कल्प का नाम वराहकल्प है;कहीं कहीं

इस की श्वेत बराह कल्प भी सज्ञा की गई है, क्योंकि पूर्व में कृष्ण-बराहकल्प और रक्तबराह कल्प आदि नाम से बहुत से बराह कल्प बीत चुके हैं। ऐसे श्वेतबराह कल्प का परिमाण४३२०००००० मानव वर्ष हैं; जिस मेंसे१९७२९४८९१८ व्यतीत हो चुके हैं। मानव युग प्रमाण के सम्बन्ध में ऐसा लेख है कि, १७२८००० वर्ष का सत्ययुग, १२९६००० वर्ष का त्रेतायुग, ८६४००० वर्ष का द्वापरयुग, और ४३२००० वर्ष का कलियुग हुआ करता है; जिस में से सत्य, त्रेता, द्वापरयुग बीत कर अब कलियुग के भी लगभग पाच सहस्र वर्ष बीत चुके हैं। आर्य्य शास्त्रों का यह सृष्टि आयु प्रमाण सुनने से बाइबिल और क़ुरान कथित सृष्टि आयु प्रमाण बालकों की उक्ति प्रतीत होती है। पूर्व वर्त्ती पश्चिमी विद्वान्गण आर्य्य शास्त्रोक्त ऐसे प्रमाणों को देखकर चौंका करते थे और इन संख्याओं को कवि की कल्पना कह डालते थे, परन्तु जब से यूरोप में विज्ञान शास्त्र की पूर्ण उन्नति हुई है तब से उन का यह सन्देह दूर होने लगा है। भूतत्व-वित् वैज्ञानिक गणों ने पृथिवी के प्रस्तर परीक्षा द्वारा यह सिद्धान्त कर लिया है कि प्राकृत नियम के अनुसार उन में ऐसा परिवर्तन लक्षों बर्ष में हो सकता है; इस कारण अगत्या वे बाइबिल और क़ुरान के मत को भ्रमपूर्ण समझने लगे हैं। आज कल के नाना शास्त्र वेत्ता वैज्ञानिक गणों ने यह निश्चय किया है कि, सूर्य्य गर्भ से पृथिवी की उत्पत्ति, और पृथिवी गर्भ से चन्द्र की उत्पत्ति हुई है, जिस में से पृथिवी गर्भ से चन्द्र की उत्पत्ति का प्रमाण वे ५०००००००० बर्ष अनुमान करते हैं, और इसी रीति पर यदि सूर्य्य से पृथिवी सृष्टि का अनुमान किया जाय तो सख्या बहुत ही कुछ बढ़ जाय गी,

चन्द्र उत्पत्ति की संख्या से पृथिवी की उत्पत्ति की संख्या का प्रमाण बहुत ही घट जाने का कारण यह है कि यह वैज्ञानिक गण चन्द्र को अभी तक असम्पूर्ण ग्रह ही मानते हैं, परन्तु पृथिवी सम्पूर्ण ग्रह है। पाश्चिमी वैज्ञानिक गणों के इन अनुसंधानों को देख कर अब कोई भी आर्य्य शास्त्रोक्त सृष्टि प्रमाण को मिथ्या नहीं मान सकता; इस कारण उन के ही वाक्य द्वारा आर्य्य ज्ञान और आर्य्य जाति की प्राचीनता सिद्ध हुई। प्रथम तो सिवाय आर्य्य जाति के और किसी को भी पृथिवी के प्राचीनत्व का बोध नहीं है, द्वितीयतः पश्चिमी अथवा आर्य्य जाति के सिवाय अन्यान्य जाति गणों में से किसी को भी अपने पूर्व पुरुषों का यथावत् ज्ञान नहीं है; तो उन पश्चिमी विद्वानों के कहने पर कैसे कोई विश्वास कर सकता है कि भारतीय आर्य्य जाति तथा यूरोपीय जाति गण सब तीन सहस्र वर्ष पूर्व मध्यएशिया में असभ्य हो कर एकत्रित वास किया करते थे। जो जाति आज दिन केवल डेढ़ वा दो सहस्र वर्ष का पता लगा सकती है बुद्धिमानगण उसके कहने का विश्वास करेंगे? अथवा यह आर्य्य जाति जो लक्षों वर्षों का दृढ़प्रमाण देती है उसके सिद्धान्तों पर विश्वास करेंगे? यूरोपीय ऐतिहासिक गण मध्य एशिया में सब मनुष्य जाति के वास का जो प्रमाण दिया करते हैं यह केवल कवि कल्पना मात्र है, क्योंकि आज दिन तक कोई भी पश्चिमी ऐतिहासिक पण्डित इस विषय में दृढ़ प्रमाण नहीं दे सके। यूरोपीय जाति का पूर्वदिशा से यूरोप में जा कर वास करने का प्रमाण मिलता है, परन्तु उस प्रमाण से भारतीय आर्य्य गणों के मध्य एशिया वास का कोई भी सम्बन्ध नहीं सिद्ध होता है; किन्तु उससे यही सिद्ध होता है कि यूरोपीय जाति गण भारत वर्ष के निकले हुए धर्मत्यागी आ-

र्ग सन्तानों के वंशोद्भव हैं। पुराण कथित उदभ्र और उसकी कथा से एडम और इभ की कथा का पूर्ण सम्बन्ध पाया जाता है।

इहलोक एवं राजनीति

ऐहलौकिक नियम तथा राज्य शासन नीति प्रचार में प्राचीन भारतवासी ही सर्वोत्कृष्ट हैं, सांसारिक शृंखला तथा प्रजा शासन नियम के प्रचार में पूज्यपाद महर्षिगण ही इस पृथिवी पर आदि और सर्व श्रेष्ठ गुरु हैं इस में सन्देह का लेश मात्र नहीं। सूक्ष्म विचार द्वारा यही सिद्ध होता है कि पारलौकिक सुख के प्राप्त करने में इस लोक में त्याग स्वीकार करना पड़ता है, परन्तु ऐहलौकिक सुख तभी हो सकता है जब जीव को अभाव अनुभव न हो; त्याग में अभाव अनुभव है परलोक सुख की इच्छा में अभाव अनुभव है, किन्तु ऐहलौकिक सुख में उस से विपरीत होता है; अर्थात् अभाव द्वारा ऐहलौकिक दुःख की वृद्धि और अभाव के कम होने से ऐहलौकिक सुख की वृद्धि हुआ करती है, इसी वैज्ञानिक भित्ती पर स्थित हो कर पूज्यपाद महर्षिगणो ने जो इस लोक में जीवनयात्रा निर्वाह करने की सुगम तथा अभ्रान्त युक्तियां निकाली थीं उन्हीं नियमों पर चलने के कारण ही आज दिन भारत के इस घोर आपत्ति काल में भी भारत वासी कथंचित् सुखी हो रहे हैं। गवर्नमेन्ट की रिपोर्ट आदि सम्वादों से भली भांति सिद्ध हो सकता है कि प्रत्येक क्षुद्र भारत वासी का मासिक आय (आमदनी) ३) रुपये से अधिक नहीं होगा, परन्तु प्रत्येक इङ्गलेन्ड वासी का आय कम से कम ८०) रुपया है। पुनः सरकारी जेल रिपोर्ट से सिद्ध होता है कि जेलखाने के कैदियों के निमित्त हमा-

री वर्त्तमान महाराणी का प्रति मनुष्य मासिक ३॥) रुपये व्यय प-ड़ा करता है, इस विचार द्वारा यही सिद्धान्त होता है कि आजदिन भारत वासी का आय जेलखाने के कैदियों के भोजन व्यय से भी कम है ; कालप्रभाव के कारण तथा अपनी निरुद्यमता के कारण भारत वासी आज दिन इतनी हीन अवस्था को पहुंच गये हैं कि दोनों समय पेट भरकर खाने योग्य आय उनको नहीं होता। ऐसी हीन अवस्था को प्राप्त हो कर भी भारतवासी सदा प्रसन्न प्रतीत होते हैं, यह प्राचीन आर्य्य जाति की शिक्षा प्रवाह का ही कारण है कि इस घोर आपत्काल में भी भारतवासीगण सुखी हो रहे है। इस श्रेष्ठता का कारण जीवन यात्रा के लिये अभाव की न्यूनता ही है ; ऐहलौकिक कार्य्यों में भारतवासी स्वभाव से ही अभाव कम रखते हैं, इस कारण से ही वे आज दिन जीवित रह सके, जैसी अवस्था एवं शिक्षा यूरोपवासियों की आज दिन है यदि कदाचित् उन पर यह आपत्ति काल पड़े तो कदापि वे अपने मनुष्यत्व वृत्तियों की रक्षा नहीं कर सकेंगे। प्राचीन आर्य्य जाति का ऐहलौकिक सदाचार तथा उत्तम शिक्षा के विषय में पश्चिमी पण्डित मोनियर विलियमस्, (Monier dilliams) पण्डित विलसन (Bilson) पण्डित काटन (Cattan) साहबों ने भली भांति वर्णन किया है। भारत वासियों की शिक्षा तथा यूरोप वासियों की शिक्षा में कितना अन्तर है, भारत वासियों के ऐहलौकिक अभाव तथा यूरोप वासियों के ऐहलौकिक अभाव में कितना भेद है उस को उदाहरण द्वारा देखने से ही प्रतीत हो सकता है। इस कारण पाठकगणों के विचार में सहायता करने के अर्थ सब से आवश्यकीय

अभाव अर्थात् सांसारिक दैनिक कार्य्य निर्वाह उपयोगी पदार्थों की एक तालिका नीचे लिखी जाती है ।

वर्तमान आर्य्य जाति की तालिका ।

बैठक घर का असबाब ।

दरी, बिछाने की	१५)
चाँदनी, बिछाने की	१०)
तकिये तीन	१२)
तसवीरें आदि	२०)
दीवट आदि	५)
पायोश	॥)
कलमदान आदि	५)
योग	६७॥)

शयन का घर ।

पलंग	२०)
गद्दीतकिया आदि	२०)
दीवट आदि	२)
तसवीर	१२)
योग	५४)

जनाना मकान ।

पलंग	१२)
दरी	१०)

पूजन आदि का सामान————————————१०)
सन्दूक आदि————————————————१०)
आइना आदि——————————————— ४)

योग ५६)

रसोई व भंडार घर ।

भंडार घर का सामान————————————५)
रसोई घर के बरतन आदि———————————५०)

योग ५५)

यह सब मिलाकर आर्य्यगृहस्थ का व्यय अधिक से अधिक २३२॥) रुपये हुआ करते हैं; जिस के द्वारा एक मध्यवर्ती आर्य्य सद्गृहस्थ अपनी जीवनयात्रा कर सक्ता है।

यूरोपीय जाति की तालिका

बैठक खाना वा ड्राइङ्गरूम

ड्राइङ्गरूम सूट अर्थात् एक कोंचदो इजीचेयर और छः कुर्सी—१८०)
बीच का आटम्पान्———————————————५०)
डीवानपोट——————————————————३०)
एक बड़ाटेबुल और कामों के लिये व एक बड़ा चिट्ठी लिखने के लिये—————————————————६०)
केबिनेट् आलमारी एक————————————७०)
घड़ी———————————————————५०)
रंग, वा गर्दखोरा—————————————१०)

चार दरजा जङ्गलेकापरदा —— ४५)
ऐना, दीवाल सजनेकी चीजें, घर में आग रखने की जगह कोलमसू या कोयला रखने का बर्तन और उस का फेयदर लोहा इत्यादि— २५)
कारपेट —— १००)
लैम्प —— ११)

योग ६३६)

दूसरे सोने का घर ॥

पांच फीट फेञ्चवेडष्टेट् या पलङ्ग दोदर —— ३०), ६०)
पलङ्ग की गद्दीस्प्रिङ्ग म्याट्रेस् —— २०)
तकिया बिछौना —— ४०)
कारपेट —— ७०)
कोयले का बर्तन इत्यादि —— १५)
छोटा टेब्ल एक —— १०)
घड़ी एक —— २०)
कम्बलमोड़ाएक —— १५)
लैम्प —— १०)

योग २६०)

तीसरा नहाने का घर ॥

ड्रेसिङ्ग टेब्ल एक —— ४०)
वाष्टेङ्ग मुंह धोने का टेब्ल —— १२)
जल के बर्तन दो —— ७)

टाइल रैक्	१)
पद्य पासकट	॥)
नहाने का टब	२०)
कमोड अर्थात् मैलात्याग का बक्स दो	४)
योग	२४॥)

भोजन घर डाइनिङ्गरूम ॥

डालनेट अर्थात् एक ऐसा टेब्ल जिस पर छः आदमी एक साथ बैठकर भोजन करें	४०)
एक मारल घड़ी	३५)
कुर्सी छः	२४)
डिनरवेगेन	२५)
साइडबोर्ड जिस्के बीच में बोतल इत्यादि रक्खा जाता है और पात्र इत्यादि रखने के	४०)
एक दर्जन नेपकिन	६॥।)
कारपेट	७०)
आगररखने का बर्तन	१५)
टेब्लढापने की चादर	२०)
योग	२७५॥।)

दूसरी चीजें ॥

लड़कों के सोने का कट यानी छोटी खटिया	१०)
चेष्ट यानी दराजदार अलमारी	१८)

गौन इत्यादि कपड़ा रखने की अलमारी——————२०)
सीढ़ी पर बिछाने का कारपेट और चढ़ाई वगैरः और चाय पीने का टेब्ल ३५)
एवम् खास खाने पकाने के बर्तन और नाना प्रकार के आवश्यकीय पदार्थ जिन की तालिका की संख्या पचास से साठ तक होगी——२१०)
एक टेब्ल——————१०)
एकजग——————१०)
डिकन्टर्स——————२०)
टम्बर्स——————१२)
डिजर्ट इस्पून छः——————३०)
टी इस्पून छः——————२०)
एग इस्पून छः——————६)
साल्ट स्पून तीन——————७)
बटरनाइफस वगैरा——————८)
नाइफ्स बारह——————२४)
और फ्रूट जगसेरी ग्लास वगैरा——————२०)

योग ५४०)

इस उपरोक्त तालिका के देखने से अनुमान होता है कि एक साधारण यूरोपीय गृहस्थ के सांसारिक व्यवहार द्रव्यों का व्यय लगभग १८०६।) रुपये हुआ करते हैं; किन्तु आर्य्य सद्गृहस्थ का व्यय यूरोपीय गृहस्थों के व्यय से एक अष्टम अंश के लगभग है। सूक्ष्म विचार द्वारा देखने से परस्पर के सब व्यय अर्थात् भोजन, वस्त्र, गृहपदार्थ, गृहनिर्माण आदि सब कार्य्यों में ही इस से भी अधिक व्यय भेद देखने में आवेगा। पूर्व्व दो तालिकायें एक प्रकार के अवस्था के मनुष्यों की

दी गई हैं; अर्थात् आर्य्यगणों की तथा यूरोपीयगणों की दोनों तालिकायें मध्यवर्त्ती गृहस्थों का विचार करके लिखी गई है; इन तालिकाओं के द्वारा अपने वर्त्तमान विचार का पारस्परिक सम्बन्ध पूर्णरूपेण निरूपित हो सक्ता है। इस प्रकार जितना यूरोपीय जाति का ऐहलौकिक अवस्था तथा आर्य्यगणों का ऐहलौकिक अवस्था पर ध्यान दिया जायगा उतना ही सिद्धान्त होगा कि भारतवासी अपने अभाव अनुभव में बहुत ही न्यून हैं; और अभाव न्यूनता के कारण वे सकल अवस्था में एक प्रकार से ही सुख अनुभव कर सक्के हैं। भारतवासी चाहे धनाढ्य हो अथवा निर्धन, उन्नत हों अथवा अवनत वे अपने इस अपिरवर्तन शील सादापन तथा अभाव न्यूनतावृत्ति से सकल अवस्था में सुखी रह कर अपनी आध्यात्मिक उन्नति द्वारा पारलौकिक मङ्गल साधन कर सक्के हैं। पूज्यपादआर्यमहर्षिगणों की दूरदर्शिता का ही यह पूर्वोक्त फल है, और उन की दूरदर्शिता द्वारा ही भारत की राजनैतिक अवस्था भी सकल समय के लिये एकरूप मङ्गल कारी है। राजनीति विचार में प्राचीनआचार्य्य गणों ने इतनी दूरदर्शिता तथा अभ्रान्त बुद्धि का परिचय दिया है कि आज दिन पृथिवी की सब जातियों में से उतनी योग्यता कोई जाति भी दिखा नहीं सकी है। राजनीति विचार में यदिच आज दिन यूरोपीय जाति ने नाना नूतन आविष्कार कर दिखाये हैं परन्तु उन काराजनीति विज्ञान सदा परिवर्तन शील ही देखने में आता है किन्तु आर्य्य राजनीति अपरिवर्तन शील तथा दृढ़ है। यूरोप ने आज दिन लिबरल (Liberal) कंसरवेटिव (Conservative.)आदि मंत्री सभा गठन की प्रणाली तथा लिमिटडमानर की (Limitd Monorchry)

आदि राजतन्त्र विधि, एवम् रिपब्लिक (Republic.) आदि प्रजातंत्र विधि आदि नाना राजनैतिक नूतन आविष्कार किये हैं; किन्तु आर्य्य विज्ञान के सन्मुख यह सब असम्पूर्ण ही हैं। प्रजातन्त्र भाव को तो भारतवासी स्वीकार ही नहीं कर सक्ते; उनकी दृष्टि में प्रजातन्त्र भाव तो अधर्म्मका घर अनुभव होता है। सृष्टि कौशलविचार द्वारा भारतवासियों ने यह निश्चय ही कर लिया है कि जीव में ज्ञान प्रभेद रहना स्वतः सिद्ध है इस कारण उस में गुरु शक्ति तथा लघु शक्ति का विचार रखना भी अपरिहार्य है; प्रजा से लेकर राजा तक, मूर्ख से लेकर विद्वान् तक, अज्ञानी से लेकर पूर्ण ज्ञानवान् तक सब प्रकार के अधिकारियों में लघुशक्ति तथा गुरुशक्ति, प्रजा तथा राजभाव, शिष्य तथा उपदेशक भाव, आज्ञाकारी तथा आज्ञाकारक भावों की स्वतन्त्रता रहना अवश्य सम्भावी है। इस अभ्रान्त सिद्धान्त के अनुसार एक मात्रप्रजा राजशक्ति तथा प्रजाशक्ति का कार्य्य चिरकाल तक पूर्णरूपेण निर्वाह नहीं कर सक्ती। यदि प्रजा को किसी कौशल द्वारा पूर्णरूपेण राजपद का भी भार दे दिया जाय तो एक न एक समय में उन का यह अधिकार उन के ही आपत्ति का कारण हो जायगा; इसी अभ्रान्त प्राकृतिक नियम के अनुसार फ्रांस देश में अनेकवार राजनैतिक विप्लव हुए; और बुद्धिमान्गणों का यही विचार है कि भविष्यत्कालमें भी फ्रांस तथा अमेरिका आदि प्रजातन्त्र राज्यों में पुनः घोर राज्य विप्लव होवेगा इस में सन्देह नहीं। इसी वैज्ञानिक विचार पर स्थित हो कर प्राचीन आर्य्यगणों ने अपनी दृष्टि इस प्रकार की स्वतन्त्रता की ओर कभी डाली ही नहीं। प्रजातन्त्र (Republicon form of Eonrrmenl) राज्य प्रणाली के विषय

में ऐसा मत केवल अपना ही नहीं है किन्तु बड़े बड़े मनन शील प-श्चिमी विद्वान् गण भी इस नूतन राजनीति के दोष अनुमान प्रमाण द्वारा सिद्ध कर चुके हैं। द्वितीयतः और प्रकार की प्रजा तथा राजा की एकता भित्ती पर जो और राजशासन प्रणाली यूरोप में प्रचलित हैं वे अवश्य आर्य्यमतानुयायी हैं किन्तु विचार विभिन्नता के कारण, और मनुष्यों में धर्म्मबुद्धि की न्यूनता के कारण वे सब रीतियां भी परिवर्तन शील हैं।इङ्गलैंड का प्राचीन इतिहास,मध्य समयका इतिहास तथा वर्तमान इतिहास के पाठ करने से विद्वान् गण मात्र ही समझ स-केंगे।कि कितना परिवर्तन राज्य के राजनीति विज्ञान में हुआ है; यदिच राजनीति उन्नति में इङ्गलैंड आज तक गिरा नहीं है, और क्रमोन्नति करता ही आया है तथापि सूक्ष्म विचार द्वारा यह कहना ही पड़ेगा कि उसकी राजनीति सदा परिवर्त्तन ही होती आई है। जहां परि-वर्त्तन की सम्भावना सदा रहती है वहां गुणविचार द्वारा अवनति से उन्नति तथा उन्नति से अवनति होने की भी सम्भावना रहती है;इसी कारण इङ्गलेन्ड की राजनीति कौशल आज दिन पृथिवी भर में बहुत ही श्रेष्ठ होनेपर भी वह भविष्यत्भयसे शून्य नहीं है। परन्तुप्राचीन भारत का अद्भुत सर्वव्यापक धर्म्म विज्ञान तथा सूक्ष्म राजनीति कौशल इतना संस्कृत और उन्नत है कि उस में कोई भी विघ्न की सम्भावना नहीं। वर्त्तमान अधःपतित अज्ञानी भारतवासियों के विषय में हम नहीं कहते; किन्तु धार्मिक तथा आर्य्यरीति और आर्य्यधर्म्म पर चलने वाले भारतवासियों के अन्तरीयभाव को अनुमान करके बुद्धिमान् गण मात्र ही कहेंगे कि भारत का राजनीति विज्ञान अपरिवर्तनशील तथा अनिवार्य है। भारतीय आर्य्यराजनीति का अविमिश्र सम्बन्ध धर्म्म के

साथ रहने के कारण धार्मिक गणों में उसका कुछ भी परिवर्तन नहीं हो सकता। आर्य्यगणों की राजनीति में उन के राजा भगवत् अंश समझे जाते हैं, आर्य्यगणों की राजनीति में राजशासन मानना तो परमधर्म्म ही है, किन्तु उनके निकट राजदर्शन, राजसेवन, राजा के निमित्त धन जन प्राण समर्पण सर्वोत्कृष्ट धर्म्म समझा गया है। आर्य्यराजनीति के अनुसार आर्य्यप्रजा अपने राजा को कुछ राजशासन के भय से नहीं मानती, किन्तु अपना कर्त्तव्यकर्म अपना परम धर्म्म समझ कर ही वह सदा राजआज्ञाधीन रहती है। आर्य्यधर्म्म में सदा सार्व्वभौम दृष्टि रहने के कारण आर्य्यप्रजा का राजा चाहे कोई धर्म्मावलम्बी हो तो भी वह आर्य्यप्रजा के निकट भगवद्रूपही है; ईसाई धर्म्म तथा मुसलमान धर्म्मावलम्बी प्रजा के धर्म्म संस्कार में साम्प्रदायिक विरोध रहने के कारण ईसाई तथा मुसलमान प्रजा कदापि अपने विधर्म्मी राजा के विरुद्ध अस्त्र धारण करने को अपना धर्म्म समझें (जिस प्रकार मुसलमान राजा के विरुद्ध आर्मीनिया वासीगण एवम् अपने भारतीय ईसाई राजा के विरुद्ध सीमाप्रान्त के मुसलमान प्रजागण किया करते हैं) किन्तु आर्य्यप्रजा किसी काल में भी अपने राजा के विरुद्ध अस्त्र धारण करने को अपना धर्म्म नहीं समझेगी। यादेच इस भारतवर्ष के आर्य्यप्रजा में से किसी किसी को कभी कभी अपने विधर्म्मी राजा के विरुद्ध अस्त्र धारण करते देखा गया है, परन्तु आर्य्यप्रजा का वह वर्ताव आर्य्यराजनीति तथा आर्य्यधर्म्म विरुद्ध है; जिन्होंने ऐसे कुकर्म्म किये है उनको आर्य्यधर्म्म तथा आर्य्यराजनीति आर्य्यशब्दवाच्य नहीं कह सकते; इसी अपरिवर्तनशील प्राचीन आर्य्यनीति पर विश्वास

करके भारत सम्राट् जितना आर्य्यगणों पर विश्वास कर सके हैं उतना और किसी धर्म्मावलम्बी प्रजा पर नहीं कर सके। प्राचीन भारत का यह सांसारिक आचार तथा संस्कृत राजनीति उस के महत्त्व का प्रधान उदाहरण है इसमें सन्देह नहीं।

दार्शनिक उन्नति ॥

इस पुस्तक में प्राचीन भारत की पूर्ण उन्नति तथा पूज्यपाद महर्षिगणों के पूर्णज्ञानी और जगत् के आदि गुरु होने का प्रमाण पृथक् पृथक् रूपेण विस्तार पूर्वक दिया जाता है। प्रमाण संग्रह करने में अपने स्वदेशीय प्राचीन ग्रन्थों की सहायता न लेकर केवल नवीन पाश्चात्य विद्वान् गणों के ग्रन्थों का ही प्रमाण दिया जाता है; नवीन शिक्षा के प्रभाव से नवीनभारत कदापि प्राचीन ग्रन्थसम्बन्धी प्रमाणों को न स्वीकार करें इस कारण उनके नवीन विचार के अनुसार नवीन यूरोप के महामहोपाध्यायगण कथित प्रमाण द्वारा अपने सिद्धान्तों की पुष्टि करने में यत्न किया जाता है। अपने शास्त्रोक्त सब सिद्धान्त ही यदिच दार्शनिक एवं वैज्ञानिक प्रमाण सिद्ध हैं, और दार्शनिक प्रमाण द्वारा वे सब पूर्णरूपेण प्रतिपादित किये जासकते हैं तथापि नवीन शिक्षा दोष के कारण आज दिन नवीनभारत की बुद्धि ऐसी मलिन हो रही है कि वे यूरोपीय विद्वानों के वाक्यों के संमुख अपने प्राचीन पूर्वपुरुषों के वाक्यों को अधिक प्रमाण सिद्ध नहीं समझते, इस कारण अगत्या वर्त्तमान देश, काल और पात्र के अनुसार यूरोपीय प्रमाण समूहसंग्रह करना पड़ा। पूर्वविचार में नाना बहिर्जगत् सम्बन्धीयउन्नति के विषय में विचार करके अब अन्तर्जगत्

सम्बन्धीय नाना उन्नतियों के विषय पर विचार किया जा रहा है। जिस प्रकार बहिर्जगत् संबन्धीय उन्नति का प्रथम सोपान शिल्प सम्बन्धीय उन्नति समझी जा सक्ती है, उसी प्रकार अन्तर्जगत् सम्बन्धीय उन्नति का प्रथम सोपान दार्शनिक उन्नति को मान सकते हैं। जिस प्रकार राजसिक बुद्धि का विकाश शिल्प उन्नति द्वारा प्रमाणित होता है, उसी प्रकार सात्विक बुद्धि का विकाश दार्शनिक उन्नति द्वारा समझा जा सक्ता है। इस सात्विक बुद्धि उन्नति रूप तथा अन्तर्जगत् सम्बन्धीय उन्नति रूप दार्शनिक उन्नति के विषय में प्राचीन भारत सब से अग्रगण्य तथा पूर्णता को प्राप्त हुआ था इस में सन्देह मात्र नहीं। पूज्यपाद महर्षिगण प्रकाशित योग दर्शन, सांख्यदर्शन, न्याय दर्शन, वैशेषिक दर्शन, मीमांसादर्शन और वेदान्तदर्शन ही इस विचार में प्रधानप्रमाण हैं। श्रीभगवान् श्रीकृष्णचन्द्र उपदेशित श्रीमद् भगवद् गीता का सगर्भयोगविज्ञान, तथा श्रीभगवान् बुद्धदेव प्रचारित अगर्भयोगविज्ञान ही इस विचार में सर्वोत्तमप्रमाण हैं। जिस प्रकार के दार्शनिक विचार पथ प्राचीन भारतीय षड्दर्शनों ने प्रचारित किये हैं; जिस प्रकार के दार्शनिक सिद्धान्त सगर्भ और अगर्भ (ईश्वर आश्रय से साधन का नाम सगर्भ, और ईश्वर आश्रय रहित होकर जो साधन किया जाय उस को अगर्भ साधन कहते हैं) रूपेण निर्णय किये गये हैं, उस प्रकार की विचार पूर्णता, उस प्रकार का अकाट्य सिद्धान्त, उस प्रकार के अभ्रान्त सारगर्भ और सार्वभौम दार्शनिक विचार न पूर्वकाल में कभी किसी जाति द्वारा आविष्कृत हुए हैं और न परकाल में और किसी जाति द्वारा होने की आशा है; इस प्रकार के सार्वभौम दर्शन शास्त्रों के आविष्कार से प्राचीन भारत ही दार्शनिक उन्नति में आदि गुरु तथा उच्च

श्रासन प्राप्त करने योग्य है इस में सन्देह ही नहीं। दर्शन शास्त्र का साक्षात् सम्बन्ध जिस प्रकार वैदिक धर्म्मके साथ है उस प्रकार दर्शन शास्त्र सम्बन्ध और कोई भी धर्म्म पृथिवी पर नहीं देखने में आता; साधारण दृष्टि से ही अनुमान हो सकता है कि आर्य्यधर्म्म के सब सिद्धान्त दार्शनिक भित्ती पर स्थित हैं परन्तु इस धर्म से अतिरिक्त ईसाई अथवा महम्मदीय कोई धर्म्म के साथ भी दार्शनिक प्रमाणों का कोई भी सम्बन्ध दिखाई नहीं पड़ता; ईसाई और महम्मदीय आदि धर्म्मनियम केवल विश्वासमूलक हैं परन्तु आर्य्यधर्म्म के सब सिद्धान्त ही दार्शनिक विचार द्वारा कृतनिश्चय हैं। आर्य्यजाति के अतिरिक्त जितनी और जातियां मध्यवर्ती काल में पृथिवी पर वर्तमान थीं उन में से केवल ग्रीक जाति और रोमन जातियों के कुछ कुछ सामान्य दार्शनिक ग्रन्थ देखने में आते हैं, परन्तु बुद्धिमान् जनगण उनके पाठ करने से ही जान सकेंगे कि उनकी ज्ञानभूमि भारतीय दर्शन शास्त्रों की ज्ञानभूमि के संमुख बालक ज्ञानवत् ही प्रतीत हुआ करती है। इस के उपरान्त आजकल के नवीन यूरोपीय दर्शनशास्त्रसमूह चाहे कितने ही विस्तार को प्राप्त होगये हों, चाहे यूरोपीय नवीन दार्शनिकगणों ने कितने अगणित पुस्तक इस शास्त्र पर लिख डाले हों, परन्तु सूक्ष्म विचार द्वारा दृष्टि डालने से यही प्रतीत होगा कि उन के वाक्य समूह भारतीय वृद्धगुरु के संमुख बालक विद्यार्थी गणों के सरल तथा सारहीन जिज्ञासा की नांई ही दृष्टि गोचर होगा। नवीन यूरोपीय दार्शनिक पण्डित मिष्टर स्पेन्सर (Mr. Spencer) मिष्टर मिल (Mr. Mill) अथवा मोनसों कोमटी (M. Comette) मोंनसों वालटेअर (M. Valtare) आदि महामहोपाध्यायगण यद्यपि अपनी अपनी बुद्धि द्वारा अन्तर्जगत् में थोड़ी दूर अग्रेसर हुए

हैं, यदिच उन में से कोई कोई पण्डितगणों ने अन्तर्जगत् के अनेक गभीर विषयों पर बहुत सा विचार कर डाला है; तथापि प्रवीण भारत तथा नवीन यूरोप इन उभय देशीय दर्शन शास्त्र ज्ञातामात्र ही साधारण विचार से समझ सकेंगे कि यूरोपियन अपने दार्शनिक विचार में अभीतक वृद्धगुरु भारत के संमुख बालक विद्यार्थी ही हैं । इस संसार में दो शक्तियां प्रतीत होती हैं, एक जड़ दूसरी चेतन, एक शारीरिक शक्ति दूसरी जीवनीय शक्ति, एक प्रकृति शक्ति दूसरी पुरुष शक्ति; जिन में से जड़ शक्ति स्थूल और चेतन शक्ति अति सूक्ष्म अतीन्द्रिय है, जड़ शक्ति का राज्य जगत् सृष्टि विस्तार में और चेतनभाव का राज्य उस से परे है; जड़ शक्ति साधारणरूपेण अनुभव योग्य है किन्तु चेतनभाव, जड़राज्य की शेष सीमा में पहुंचने पर केवल मात्र अनुमान करने ही योग्य है । आज दिन तक यूरोप में जितने दर्शनशास्त्र प्रकाशित हुए हैं वे सब अभीतक जड़ जगत् में ही भ्रमण कर रहे हैं, यदिच उन्हों ने जड़ जगत् में बहुत कुछ अन्वेषण कर लिया है तत्राच चैतन्यजगत् को वे दूर से भी नहीं निरीक्षण कर सके हैं; यदिच यूरोपीय विद्वान्‌गणों ने जड़राज्यकी कुछ कुछ छान बीन की है तथापि उन को अभीतक यह भी ज्ञान नहीं है कि इस जड़भाव से अतिरिक्त और कोई चेतनभाव है या नहीं । जब उन की यह दशा है, जब देखते हैं कि वे प्रकृति राज्य में ही भ्रमण कर रहे हैं और प्रकृति को ही सब कुछ करके मान रक्खा है, जब देखते हैं कि पुरुष का सामान्य ज्ञानमात्र भी उन को अभीतक नहीं मिला है, जब देखते हैं कि जीवभाव, पुरुषभाव, ईश्वरभाव, ब्रह्मभाव आदि चैतन्य जगत् सम्बन्धीय कोई भाव का भी यथार्थरूप उन के अनु-

मान में नहीं आया और जब देखते हैं कि अभीतकयूरोपीय दार्शनिक गण जड़ जगत् के माया राज्य में ही अपने आपे को भूल रहे हैं; तब कैसे नहीं विश्वास करेंगे कि वे दार्शनिक ज्ञान में अभी बालक ही हैं। अन्तर्जगत् सम्बन्धीय विचाररूप महासागर के दो कूल हैं; एक ओर का कूल तो यह विस्तृत संसार है और दूसरे ओर का कूल ब्रह्मसद्भावरूप निर्वाणपद है; इस विचारभूमि के एक ओर संसार रूप इन्द्रियगम्य विषय और दूसरे ओर अतीन्द्रिय ब्रह्मपद है। यूरोपीय दार्शनिक गण यदिच प्रथम कूल की ओर से आगे बढ़ गये हैं परन्तु वे इस विस्तृत महाज्ञान समुद्र में थोड़ी दूर अग्रेसर होते ही निराश हो पुनः पीछे की ओर देखने लगे हैं; और अपने असम्पूर्ण ज्ञान शक्ति के कारण यही समझने लगे हैं कि इस महासमुद्रके चारों ओर पूर्व भूमि के अनुसार दृश्य विषय संसार ही है; उन को केवल एक कूल का ही सम्वाद विदित होने के कारण, वे केवल इस महासागर के बीच दिग्भ्रम वश हो रहे हैं, इस कारण उन को यही प्रतीत होता है कि जो कुछ है सो जड़ प्रकृति ही है। इस पुस्तक लिखित सिद्धान्तों पर जिन को कुछ सन्देह है वे अपने दर्शनशास्त्र तथा यूरोपीय दर्शन शास्त्रों को मनोनिवेश पूर्वक अध्ययन करने से ही जान सकेंगे कि अपने आर्य्य दर्शन शास्त्रों के संमुख यूरोपीय दर्शन अभी तक दर्शन नाम धारण करने योग्य ही नहीं हुआ है। इस पुस्तक में यूरोपीय नवीन पक्ष तथा भारतीय प्रवीन पक्ष के जितने आचार्य्यगणों का नाम आया है अथवा जितने ग्रन्थों का वर्णन किया गया है उन उभय पक्षों के ग्रन्थ समूहों को पाठ करने से बुद्धिमान् मात्र ही इस पुस्तकोक्त सत् पक्ष पर दृढ़ता को प्राप्त हो सकेंगे। भारतीय दर्शन शास्त्रों की श्रेष्ठता के विषय में

केवल मपना ही मत नहीं है किन्तु संस्कृतज्ञ सकल यूरोपीय विद्वान्गणों ने ही एक वाक्य हो कर अपने आर्य्यदर्शन शास्त्रों की बहुत ही प्रशंसा की है, उन्हों ने एक वाक्य हो कर यही कहा है; अन्यदेश वासी तथा अन्य धर्म्मावलम्बी होने पर भी उन सबों ने यही सम्मति प्रकाश की है कि पृथिवी पर प्राचीन भारतवासी ही दार्शनिक जाति (Nation of philosophers) है, यदि अभीतक कोई उन्नत तथा पूर्ण दर्शन-शास्त्र जगत् में प्रकाशित हुआ है तो वह भारतीय दर्शन शास्त्र ही है। पण्डित अग्रगण्य विलसन (Wilson) भेलनटाइन(Valantine) विलियम जोन्स (William Jones) सेन्ट हिलरी (Saint Hilaire) बर्नफ (Burnouf) लेसीन (Lassen), डासीन (Dassien) मो-क्षमूलर (MaxMuller), आलकट (Olcott), जज (Judge) सिनट (Seneth) हीगल (Hegel) राथ (Roth) मेवर (Muir) कोलब्रुक (Colebrooke) होगसन (Hodgson) कमोडीकोरस (Csmodekoros), हारडी (Hordy) एवम् धीमती महाप-ण्डिता श्रीमती ब्लेवेटस्की (Blavatskey) और अनीबेसन्ट (Anne-bisent) आदि यूरोपीय श्रेष्ठ आचार्य्यगण अन्यमतावलम्बी होनेपर भी सबों ने एक वाक्य होकर प्राचीन भारतीय दार्शनिक बुद्धि की अनन्त महिमा गाई है; सबों ने अगत्या यही स्वीकार किया है कि प्राचीन भा-रत दार्शनिक विचार में जितने दूर अग्रेसर हुए थे उतने दूर अभीतक यूरोप अग्रेसर हो नहीं सका है। प्राचीन भारत के और और नाना उन्नति सम्बन्ध में यदिच यूरोपीय ग्रन्थों में कम प्रमाण मिलते हैं, प्रा-चीन भारत की वैज्ञानिक तथा धर्म्म आदि उन्नति विषयों को यदिच यूरोपीय विद्वान् गणों में से कम लोग ही समझ सके हैं; तथापि भारती-

य दार्शनिक उन्नति के विषय में तो अगणित यूरोपीय विद्वान्गण सम्मति दान कर चुके हैं; भारतीय दर्शन शास्त्र बहुत ही उन्नत हैं, भारत वासी दार्शनिक जाति है, ऐसे प्रमाण युक्त वाक्य सब भारत इतिहासज्ञ यूरोप वासी ही एक वाक्य होकर कहा करते हैं। भारतीय दर्शनशास्त्र उन्नत हैं इस में तो सन्देह ही नहीं रहा क्योंकि जहां सर्व्व सम्मति है वहां सन्देह रह नहीं सकता, किन्तु भारतीयदर्शन समूहों में कहीं कहीं विचार भेद देखने से कोई कोई विद्वान्गण दर्शनोक्त सत्यता पर सन्देह करने लगते हैं, वे कहते हैं कि जब दर्शनों में नाना मत भेद हैं तो मतों की एकता कैसे हो सकती है और जिज्ञासुगणों का कल्याण कैसे हो सकता है। परन्तु सूक्ष्म दृष्टि से विचार करने पर इस प्रकार के सन्देह उठ ही नहीं सकते। भारतीय नानादर्शन शास्त्रों में जो मत भेद सा प्रतीत होता है वह वास्तव में मत भेद नहीं है किन्तु अधिकार भेद के अनुसार पथ भेद मात्र है; जब देखते हैं कि सब शास्त्र ही अग्रेसर होते हुए शेष में एक मात्र लक्ष्यस्थल पर ही पहुंच जाते हैं, जब देखते हैं कि सब का बरताव चाहे कैसा ही हो किन्तु अवलम्बन एक ही है; तब कैसे स्वीकार कर सकेंगे हैं कि अपने आर्य्य शास्त्रों में वास्तव में मत भेद है। यदिच षड्दर्शन में योगदर्शन अष्टाङ्गयोगविचार करता है, सांख्यदर्शन प्रकृति पुरुष पृथक्ता विचार करता है, वैशेषिक और न्यायदर्शन परमाणु विचार द्वारा पदार्थ निर्णय करता है, मीमांसा दर्शन कर्म्म की विचित्रता तथा कर्म्मप्रभाव वर्णन में प्रवृत्त है, और वेदान्तदर्शन ज्ञान विस्तार द्वारा जीव ब्रह्म की एकता करता हुआ अद्वैतभाव की सिद्धि कर रहा है; तत्राच सूक्ष्म विचार द्वारा यही सिद्धान्त होगा कि सब ही एकमात्र वेदप्रतिपाद्य मुक्ति पद के ज्ञान विस्तार में ही तत्पर हैं; कार्य्य कारण

अन्वेषण द्वारा यही समझ में आवेगा कि यह सब दर्शनशास्त्र ही विभिन्न अधिकारियों को विभिन्न ज्ञानभूमि स्थित मार्ग द्वारा एकमात्र लक्ष्यस्थल पर पहुंचा रहे हैं। यह यथार्थ है कि मीमांसादर्शन कर्म्म द्वारा ही मुक्तिसाधन पथमें नियोजित करता है किन्तु सांख्यदर्शन कर्म्म का खण्डन करता है, यह यथार्थ ही है कि भक्ति प्रतिपाद्य दर्शनशास्त्रसमूह ईश्वर भक्ति को मुक्ति का प्रधान कारण कर के वर्णन करते हैं किन्तु ज्ञानप्रतिपाद्य दर्शनशास्त्रसमूह ज्ञान को ही मुक्ति प्राप्त करने का एकमात्र उपाय कह कर सिद्ध करते है, परन्तु सार्वभौम विचार दृष्टि द्वारा यही सिद्धान्त होगा कि वे सब एकही लक्ष्य को स्थिर कर रहे है, उपाय निर्णय करने में मत विरोध होने पर भी लक्ष्य निर्णय करने में कोई भी मत भेद नहीं प्रमाणित होता। आर्य्य शास्त्रोक्त नाना दर्शनशास्त्रों में यदिच ज्ञानभूमि तथा अधिकार भेद के अनुसार विचारभेद पाया जाता है तत्राच निरपेक्ष सार्वभौम दृष्टि से देखने पर यही प्रतीत होगा कि वास्तव में पूज्यपाद महर्षिगणों के मत में विरोध कहीं भी नहीं है। प्रथम तो यही विचार करने योग्य है कि एक ही आचार्य्य ने नाना स्थान पर नाना प्रकारके उपदेश दिये हैं; एक मात्र श्रीभगवान् वेदव्यास जी ने वेदान्तशास्त्र वर्णन करते समय सब कुछ खण्डन कर डाला है, परन्तु पुनः उन्हीं ने श्रीमद् भागवत आदि पुराण वर्णन करते समय भक्ति तथा कर्म्म को ही प्रधान अवलम्बन सिद्ध कर दिखाया है; इसी प्रकार महर्षि शाण्डिल्य याज्ञवल्क्य आदि कों के भी नाना स्थान में नाना उपदेश पाये जाते है; यदि वास्तव में इन स्वतन्त्र२ अधिकारों में भेद बुद्धि रहती तो कदापि एकही आचार्य्य स्वतन्त्र स्वतन्त्र स्थानो में उ-

न विषयों का वर्णन नहीं करते । सब आर्य्य दर्शन मत समूह किस किस ज्ञानभूमि पर स्थित हैं और उन सबों की एकता किस प्रकार से समझी जा सकती है एवं सब महर्षि वाक्य ही कैसे अभ्रान्त सिद्ध हो सकते हैं इत्यादि सब गम्भीरविषयों का वर्णन इस ग्रन्थकर्त्ता रचित "निगमागमी"नामक सब दर्शनशास्त्रों के स्वतन्त्र २ भाषा भाष्यों में द्रष्टव्य हैं; इसी कारण वर्तमान देश, काल, पात्रानुसार ऐसे विस्तृत भाष्य ग्रन्थों का क्रमशः विस्तार इस साधुमण्डली द्वारा होता रहेगा ।

परलोक ज्ञान

इस संसार में सब से कठिन प्रश्न परलोक का है । परलोक विचार में प्राचीन काल के महर्षिगण जितने अग्रेसर हुए थे उतनी अग्रगामिता आजदिनतक पृथिवी की कोई मनुष्य जाति को नहीं प्राप्त हुई है । परलोक विचार में आज दिन मनुष्य समाज की सब जातियां विशेषतः पाश्चात्य यूरोपीय जाति अभी तक बालक ही है, परन्तु पूर्णज्ञानी प्रवीण महर्षिगण परलोक को संमुख स्थित पदार्थों की नांई स्पष्टरूपेण वर्णन कर दिखाया है । नवीन मनुष्य जातियों में से आजतक किसी कोभी कुछ अनुभव नहीं है कि परलोक क्या पदार्थ है और परलोक गत जीवों की क्या अवस्था होती है; अभी तक वे केवल बालकों की नांई अन्धविश्वासों पर ही भ्रमण किया करते हैं । परन्तु त्रिकालदर्शी पूज्यपाद-महर्षिगणों ने जीव गणों के हितार्थ इस सब से गभीर सम्वाद को अति सरल रूप से वर्णन करदिया है । अपनी त्रिकाल विषयक बुद्धि और अभ्रान्त भविष्यत् दृष्टि द्वारा वे कह गये हैं कि जीव अमर है वह कदापि नहीं मरता । वे कह गये हैं कि जीव देह तीन भाग में विभक्त है यथा;

कारण शरीर,सूक्ष्मशरीर और स्थूलशरीर,जिन में से जीव के मृत्यु होने पर(जिस को हम लोग मृत्यु कहते हैं परन्तु यथार्थ में वह केवल जीव का स्थूलशरीर परिवर्तन मात्र है) स्थूल शरीर तो यहीं पड़ा रह जाता है और सूक्ष्म शरीर विशिष्ट जीव लोकान्तर में गमन करके पुनर्जन्म को प्राप्त हो जाता है। वे कह गये हैं कि जिस प्रकार मनुष्य गण का वासोपयोगी यह पृथिवी लोक है उसी प्रकार और भी अनन्त लोक इस ब्रह्माण्ड में उपस्थित हैं। वे कह गये हैं कि जिस प्रकार मनुष्य एक जीर्ण वस्त्र को परित्याग करके दूसरा नवीनवस्त्र धारण किया करता है उसी प्रकार जीव के कर्म्मानुसार जीव का जब एक देह अयोग्यता को धारण कर लेता है तब ही वह उस शरीर को त्याग करके दूसरा शरीर ग्रहण करने में प्रवृत्त हो जाता है। वे कह गये हैं कि यह संसार पृथिवी, जल, तेज, वायु और आकाश इन पञ्च तत्त्वों से बना हुआ है, किसी लोक में एक तत्त्व की अधिकता है और किसी लोक में दूसरे; उसी रीति के अनुसार अपने लोक में पृथिवी तत्व की अधिकता है, और यहां के जीवगण पार्थिव शरीर को ही प्राप्त होते हैं; परन्तु और ऐसे भी लोक हैं कि जहां वायवीय और तैजस आदि के शरीर विशिष्ट जीव भी हुआ करते हैं। वे कह गये हैं कि पृथिवी से उन्नत लोक तो स्वर्ग आदि और पृथिवी से अधोलोक नरक आदि संज्ञाविशिष्ट हैं। वे कह गये हैं कि जीव अपने किये हुए कर्म्म के अनुसार ही इन अच्छे और बुरे लोकों को प्राप्त हुआ करता है; और जिसप्रकार के कर्म्म वह करता रहता है उसी क्रम के अनुसार वह उत्कृष्ट और निकृष्ट लोकों में जन्म लेता रहता है। वे कह गये हैं कि स्वर्गादि उत्कृष्ट लोक और नरक आदि निकृष्टलोक इन दोनों में ही भोग का अंश अधिक है

परन्तु हमारे इस मनुष्य लोक में कर्म्म अर्थात् पुरुषार्थ करने का अवसर अधिक मिलता है। ये कह गये हैं कि जीव जितने उन्नत लोकों को प्राप्त होता है उतनी ही आध्यात्मिक आनन्द की वृद्धि उसमें होती जाति है और मुक्ति पद का अनुभव अर्थात् मुक्ति पद के सुख का विचार करने में उस को अवसर अधिक मिलता जाता है। वे कह गये हैं कि देह त्याग के अनन्तर जीव को मूर्च्छा अर्थात् प्रेतत्व हुआ करता है पश्चात् श्राद्ध आदि वैदिक कर्म्म और ईश्वर प्रार्थना से उस प्रेतत्त्व का नाश हो कर जीव लोकान्तर को शीघ्र प्राप्त हो सकता है। वे कह गये हैं कि अन्त में जैसी मति होती है उसी प्रकार लोकान्तर की प्राप्ति हुआ करती है। वे कह गये हैं कि यद्यपि सत् और असत् कर्म्म के अनुसार उत्कृष्ट और निकृष्ट लोकों में जन्म लेना रूप आवागमन चक्र जीव के साथ ही लगा हुआ है, तत्राच मुक्ति पद कुछ और ही है और वह इन झगड़ों से अतीत है। वे कह गये हैं कि यद्यपि मनुष्यगण अपनी इच्छा के अनुसार और लोकों में नहीं जा सकते परन्तु स्वर्गादि लोक के उन्नत जीव गण अपनी इच्छा के अनुसार इस पृथिवी आदि में भ्रमण कर सकते हैं। वे कह गये हैं कि उन्नत लोक के शरीर हम से सूक्ष्म भूत विशिष्ट होने के कारण हमारे नेत्रों से अदृष्ट रह सकते हैं; परन्तु उन में भौतिक शक्ति अधिक रहने के कारण वे अपने शरीर को हमारे दर्शन योग्य अवस्था में भी परिणत कर सक्ते हैं। वे कह गये हैं कि जीव के मृत्यु होने के अनन्तर (अर्थात् स्थूल शरीर त्याग के बाद ही) तत्क्षण में ही उस को दूसरी योनि धारण करके नूतन स्थूल शरीर ग्रहण करना पड़ता है अर्थात् जन्मान्तर में जीव के साथ सदा लगा रहता है। वे कह गये हैं कि यद्यपि लोकों की उत्कृष्टता और निकृष्टता के अनुसार जीवगण उत्कृष्ट और निकृष्ट स्थूल शरीर को प्राप्त

हुआ करते हैं; परन्तु स्थूल, सूक्ष्म और कारण यह तीनों शरीर प्रत्येक जीवों के साथ लगे हुए हैं; अर्थात् कारण शरीर और सूक्ष्म शरीर सब में एकरूप ही हैं; केवल कर्म्म फल के अनुसार जीव शरीर की प्रकृति के विस्तार अथवा संकोच को प्राप्त होकर अपने अपने कर्म्म अनुसार अच्छे अथवा बुरे स्थूल शरीर को धरण करके अच्छे अथवा बुरे लोकों में निवास किया करते हैं। वे कह गये हैं कि जिस प्रकार आकाश का अन्त नहीं है उसी प्रकार जीव वासभूमि, आकाश भ्रमणकारी लोकों की भी संख्या नहीं हो सकती; अनन्त भगवान् की सृष्टिलीला अनन्त ही है। इत्यादि।

पूज्यपाद महर्षिगण जो कुछ अनुभव करते थे अथवा जो कुछ कहते थे सो वे अपनी त्रिकालदर्शिता और आध्यात्मिक ज्ञान से ही कह सकते थे; भूत भविष्यत् और वर्तमान यह तीनों कालज्ञान अभ्रान्त रूपेण उन में थे क्योंकि योग शक्ति द्वारा समाधि बुद्धि से वह सब कुछ जान लिया करते थे। परन्तु अब स्थूलदर्शी पश्चिमी विद्या में वह शक्ति नहीं है, इस कारण पश्चिमी विद्वान्गण पारलौकिक विषयों को उस रीति पर अनुभव करने के योग्य नहीं हैं; और न हम आशा कर सक्ते हैं कि वे केवलमात्र अपनी बुद्धिद्वारा अतीन्द्रिय सूक्ष्म पारलौकिक विषयों को जान सकें। तथापि नूतन आविष्कृत स्पीरीच्युअलीज्म (Spiritualiseme) और म्यसमेरीज्म (Mesmeresem) नामक विद्यायें द्वारा वहां के बड़े बड़े बुद्धिमान् पण्डितगणों ने इस परलोक ज्ञान के विषय में जो कुछ अनुभव किया है केवल वही प्रमाण यहां पर दे सक्ते हैं। इन विद्याओं के आविष्कार में वर्तमान पाश्चात्य जगत् प्रशंसा के योग्य है इस में सन्देह नहीं। स्पीरीच्युअली-

ज़्म विद्या दूसरी आत्माओं को बुलाने का नाम, और म्यसमेरीज़्म विद्या अपनी शक्ति द्वारा दूसरे पुरुष को आध्यात्मिक निद्रा में लिटा कर अपने वशीभूत करने का नाम है। इन दोनों विद्याओं के द्वारा पण्डित गणों ने बहुत से अतीन्द्रिय और सूक्ष्मातिसूक्ष्म विषयों का आविष्कार किया है; जिनमें से पारलौकिक विषयक कुछ कुछ विवरण विचारार्थ प्रकाशित किया जाता है। आलेन करडेक साहब की "स्वर्ग और नरक" नामक पुस्तक में लिखा है कि फ्रान्स देश की राजधानी पेरी नगर में एक स्पीरीच्युअलीज़्म विद्या की सभा थी; उस में उस नगर के बहुत बड़े बड़े मनुष्य सभ्य थे। जिन में से मॉसन साहब के नाम से इस सभा में एक प्रतिष्ठित सभ्य समझे जाते थे। उन की मृत्यु होने के एक वर्ष पूर्व वे पीड़ित हुए, और उस पीड़ा में उन्हों ने नाना क्लेश पाया। शरीर त्याग करते समय उन्हों ने इस सभा के सभापति को एक पत्र लिखा कि," मेरे देहान्तर प्राप्ति के अनन्तर ही मेरी आत्मा को आप लोग अवश्य बुलाइयेगा, और किस किस रूप से आत्मा शरीर को त्याग करता है और उस समय जो जो अनुभव होता है उस विषय में आप लोग मेरी आत्मा से विशेष प्रश्न करियेगा, तो मैं अवश्य ही उस सूक्ष्म शरीर में आप लोगों को इस आध्यात्मिक ज्ञान का विस्तारित विवरण ज्ञात करूंगा"। सन् १८६२ ईस्वी की तारीख़ २१ अप्रेल को इस साहब के परलोक गमन के थोड़ी देर के अनन्तर ही उस स्थान में जा कर मृत शरीर के पास ही सभा अर्थात् चक्र करके सभ्यगण बैठे और नियमित ईश्वर उपासना के पश्चात् उन की आत्मा का आवाहन किया गया। इस चक्र में बहुत शीघ्र ही मृतपुरुष की आत्मा आगई; तब प्रश्न और उत्तर होने लगे।

प्रश्न—प्यारे भाई! तुम्हारी इच्छा के अनुसार इस समय हम लोगों ने तुम को बुलाया है!

उत्तर—भगवान् की स्तुति करो, उन्हीं की कृपा से मैं तुम्हारे समीप इस समय आ सका हूं। किन्तु मैं बड़ा ही दुर्बल हूं, थर थर कांप रहा हूं।

प्रश्न—परलोक गमन करने के पूर्व तुमको यहां बड़ा ही कष्ट हुआ था, इस समय भी क्या तुमको वे सब कष्ट अनुभव होते हैं? दो दिन पहिले की अवस्था से आज की अवस्था मिलाकर कहो तो कि तुम को कैसा अनुभव होता है!

उत्तर—पहिले जितने कष्ट थे वे सब इस समय कुछ नहीं हैं। इस समय बड़ा सुख अनुभव होता है। मेरा शरीर नूतन बन गया है। जन्म ही नूतन अनुभव होता है। मृत्तिका के शरीर से आत्मा किस प्रकार से निकली सो मैं पहिले कुछ नहीं समझ सका। उस समय बहुत सी आत्मायें अज्ञान अवस्था में रहती हैं, किन्तु मरने के पूर्व मैंने और मेरे प्रिय लोगों ने भगवान् की प्रार्थना की थी कि मरने के पश्चात् मुझ को बातचीत करने की शक्ति बनी रहे और श्रीभगवान् ही की कृपा से मुझ में वह शक्ति इस समय है।

प्रश्न—मरने से कितने समय पश्चात् आप को ज्ञान प्राप्त हुआ था?
उत्तर—प्रायः आधा घण्टा। उस लिये भी मैं भगवान् का गुणानुवाद करता हूं।

प्रश्न—आप किस प्रकार से जानते हैं कि आप इस पृथिवी से वहां गये हैं!

उत्तर—इस विषय में मुझे कुछ भी सन्देह नहीं है। जब मैं पृथिवी

में रहता था तब अपनी आयु सदा परोपकार में व्यतीत करता था। इस समय आत्मभूमि में रहकर सत्यानुसंधान का प्रचार करने के लिये आध्यात्मिक विज्ञानशास्त्र मनुष्यों में प्रचारित करूंगा। मैं अच्छा था, इस कारण अब इस समय सबल हुआ हूं—मानों नूतन कलेवर मिलगया है। यदिच मुझे इस समय आप देखेंगे तो पुनः उस गाल बैठे दांत गिरे बूढ़े का मनन भूल जांयगे; क्योंकि अब मैं पूर्णनवयुवक बन गया हूं। इस आत्मभूमि में पूर्व मांसका लोथड़ा बन देह धारण किए हुए विचरना नहीं पड़ता; यहां का शरीर अति सूक्ष्म है। यह असीम विश्वजगत् मेरा गृह है; और उसी विश्वपिता के समान सम्पूर्ण हो कर मेरा भविष्यत् भाग्य है। मुझ को अपनी सन्तानों से वार्तालाप करने की इच्छा होती है, कदाचित् वे मेरी यह अवस्था देख कर अपना विश्वास परिवर्तन कर सकें।

प्रश्न—तुम को अपनी यह मृत देह देखकर मन में कैसा भाव होता है?

उत्तर—अहा!—शरीर तो मृत्तिका ही हो जायगा, किन्तु इस के द्वारा मैं आप लोगों से परिचित था। मेरी आत्मा का वासस्थान, इस शरीर ने मेरी आत्मा को पवित्र करने के लिये कितने दिनोंपर्यन्त कैसा कैसा कष्ट सहा है! देह! तुम्हारी ही कृपा से मुझे आज यह सुख मिल रहा है।

प्रश्न—आप को क्या मरने के समय तक ज्ञान था? तब आप के मन का भाव कैसा था?

उत्तर—हां था—उस समय मैं चर्म्म चक्षु के द्वारा नहीं देख सक्ता था, परन्तु ज्ञान चक्षु के द्वारा सब कुछ देखता था। पृथिवी के सब काम मन में उदय होने लगे। ठीक शरीर से पृथक् होते समय आत्मा इ-

ष्टि हीन होगया; पुनः अनुभव होने लगा कि किसी अनजान शून्याकार आकार को धारण करके मैं चल रहा हूं। पुनः थोड़ी देर में एक अद्भुत आनन्दमय स्थान में पहुंच गया; वहां सब दुःख भूल गया, और तब मैं एक अपार आनन्दसागर में मग्न होने लगा।

प्रश्न—आप क्या जानते हैं-(सम्पूर्ण बात मुख से बाहिर भी नहीं हुई थी कि उत्तर लिखा जाना आरम्भ होगया)

उत्तर—जो लिखते हो सो अवश्य अवश्य होगा। श्मशान भूमि और मृतकशरीर देखकर लोगों को परकाल की स्मृति और नास्तिकों के मन में भय उत्पन्न हुआ करता है इसलिये धर्म्मसम्बन्ध में मेरी जो कुछ सम्मति है उसे सब लोगों पर विदित कर देओ, क्योंकि इस से बहुत सा उपकार मनुष्य समाज को पहुंचेगा।

पुनः जब मृतकशरीर पृथिवी के नीचे रक्खा जाने लगा तब चक्र में लिखा कि—" हे भाइयो ! मृत्यु से भय कदापि मत करो। पृथिवी के सब दुःखों में धैर्य्य अवलम्बन पूर्व्वक सत्यपथ में सब समय विचरण करने को यत्न करो, तब असीम सुख को अपने सामने देखोगे। हे बन्धुगण सदा सत्य के प्रचार में प्रवृत्त रहो; इस विषय को सदा मन में रखना उचित है कि पृथिवी में वही लोग सुख से चारों ओर वेष्टित हो सकते है कि जो और लोगों को सुख से वञ्चित न करते हों; सो इस कारण यदि सच्चे सुख और पूर्ण सुख के पाने की इच्छा हो तो दूसरों को सुखी करो "। तत्पश्चात् उस दिन पैरी नगर की उस सभा में अपना कार्य्य बन्द किया; और पुनः उसी सन् के और उसी महीने के पच्चीसवीं तारीख को पुनः अपनी सभा का अधिवेशन किया, और तब चक्र में उन्हीं साहब की आत्मा पुनः आने पर प्रश्न और उत्तर होने लगा।

प्रश्न—मरने के समय क्या बड़ा कष्ट होता है ?

उत्तर—ज़रूर कष्ट होता है। पृथिवी में रहने का समय केवल दुःख का समय है, और मृत्यु उसी दुःख की पूर्णाहुति है। आत्मा शरीर से अलग होने के पहिले, सम्पूर्ण देह से तेज खींच लेता हैं। इसी को सब लोग मरने का कष्ट कहते हैं इस खिचाव में आत्मा अचेत हो जाती है।

प्रश्न—अच्छा, शरीर से अलग होने के कुछ पहिले आप की आत्मा आत्माभूमि को देख सकी थी ?

उत्तर—इस प्रश्न का उत्तर पहिले ही देचुका हूं। मैंने वहां पहुंच कर अपने आत्मीय सम्बन्धियों को देखा। उन लोगों ने बड़े आनन्द के साथ मेरा स्वागत किया। शरीर के नीरोग और बलवान् हो जाने में आनन्द के साथ शून्य स्थान में मैं चलने लगा। पथ में मैंने जिन जिन पदार्थों को देखा उन की आश्चर्य्यसुन्दरता वर्णन करने के योग्य शब्द ही संसार में नहीं है; केवल यह ही समझ लेना उचित है कि तुम लोग पृथिवी में जिन पदार्थों को सुख कहा करते हो वह केवल उपन्यास मात्र है। तुम लोगों के बड़े बड़े कवियों की कल्पना भी यहां के सुखकी एक छोटे से छोटे अंश वर्णना करने को समर्थ नहीं हो सकृती।

प्रश्न—परलोक गामी आत्मा सब देखने में कैसे होते हैं ? उन लोगों के भी क्या मनुष्य के नाईं हाथ पाव आंख मुंह आदि हुआ करते हैं ?

उत्तर—हां वैसे ही होते हैं, वे भी ठीक मनुष्य के नाईं आकारविशिष्ट हुआ करते हैं। केवल भेद इतना ही है कि मनुष्यों का शरीर ब-

हुत मोटा और भद्दा हुआ करता है तथा बुढ़ापे से अथवा शोक दुःख से जीर्ण हो जाता है; परन्तु परलोक गामी आत्माओं का शरीर बहुत सूक्ष्म और अतिसुन्दर होता है। वे अति अल्पचेष्टा से ही चल फिर सक्ते हैं और जरा आदि से उन के शरीर में कोई भी विघ्न नहीं पड़ता। हम लोग अपनी इच्छा के अनुसार जहां चाहें वहीं रह सक्ते हैं; यह देखो इस समय मैं तुम्हारे पास ही हूं, और तुम्हारे हाथ पर हाथ रक्खे हूं, परन्तु तो भी तुम कुछ भी अनुभव करने को समर्थ नहीं हो। हम लोगों की आंखें सब द्रव्यों के भीतर और बाहर के सब पदार्थों को देख सक्ती हैं।

प्रश्न–आप लोग किसी के मन की बात कैसे जान सकते हैं !

उत्तर–यह कारण तुम लोग शीघ्र नहीं समझ सकोगे। धीरज धारण करके संसार में धर्म करो तब सब कुछ आपही आप समझ जाओगे। तुम लोगों के मन की चिन्ता चारों ओर के आकाश में अङ्कित हो जाती है, और उन्ही चिन्ताओं को परलोक गामी आत्मागण पढ़ सक्ते हैं।

इस प्रकार से स्पीरीच्युअलीज्म सभा में वैज्ञानिक चक्र द्वारा परलोकगामी आत्माओं से कथोपकथन करके यूरोप और अमिरिका के अनेक विद्वान् गण आध्यात्मिकजगत् के अनेक सम्बाद विदित कर पुस्तकाकार प्रकाशित कर चुके हैं। और बहुत सी परलोक गामी आत्माओं ने विषय का अनुरोध भी किया है कि संसार में आध्यात्मिकजगत् का गूढ़रहस्य क्रमशः प्रचारित होना उचित है क्योंकि आजकल के विद्वान् गण परलोक विषयक ज्ञान में बालक वत् हैं इस शास्त्र में प्रथम प्रथम बहुत पुरुषों का अविश्वास हुआ

करता था; परन्तु सत्य, सत्यही है; क्रमशः अनेक विद्वान्गण इस विद्या की सत्यता अनुभव करके आध्यात्मिक जगत् के संवादों के खोज करने में प्रवृत्त हुए थे और अब भी हो रहे हैं। ऐसे लोगों में से अमिरिकादेशवासी जौन डब्लू एडमण्ड्स (Jhon. W. Edmomds) साहब के नाम से एक प्रतिष्ठित पुरुष थे; वे वहां के अदालत के एक बड़े और मानी जज थे और जिन के वाक्य पर समस्त अमिरिकावासियों का विश्वास है। यह साहब प्रथम में पाश्चात्य ज्ञान शैली के अनुसार इन विषयों को कुछ भी नहीं मानते थे, परन्तु सत्य अनुसंधान करने में वे दृढ़व्रत थे इस कारण न मान-ने पर भी क्रमशः सत्य घटनाओं को देखते २ उन का विश्वास परलोक- विषयक स्पीरीच्युअलीज्म शास्त्र पर जमगया, और शेष में वे एक इस शास्त्र के प्रधान आचार्य्य बन गये। उन्हों ने अपना पूर्व अन्ध विश्वास और पश्चात् के ज्ञान पूर्ण अनुसंधान समूहों को विस्तार से विवरण सन् १८५३ ईस्वी में छपी हुई "स्पीरीच्यु अलीज्म" नामक पुस्तक में लिखा है। उस पुस्तक में बहुत ही विषय हैं; परन्तु हमारे नवीन शिक्षित भारतवासियों को परलोक सम्बन्धीय विचार में दृढ़ करने के लिये जितने प्रमाण की आवश्यकता है, केवल उतने शब्द ही का यहां अनुवाद किया जाता है। साहब ने अपनी पुस्तक में लिखा है कि, "जब मेरा विश्वास इस विद्या पर हो गया और मैं अपने ही ज्ञान द्वारा अनुसंधान करने लगा तो मुझे इन निम्न लिखित सात विषयों पर विश्वास दृढ़ करना पड़ा।

(१) इस पृथिवी पर आयु समाप्त करने के अनन्तर मनुष्य के आत्मा की स्थिति रहती है इस में कुछ भी सन्देह नहीं। बहुत से

सच्चे धार्मिक मनुष्यों को इस पारलौकिक विषय में खोज करते देखा; परन्तु अवशेषमेंउनको अपने इसी सिद्धान्त पर स्थिर होते देखागया है ।

(२) जिन लोगों को हम पृथिवी पर प्यार करते हैं उन लोगों से हम लोगों की स्वतन्त्रता मृत्यु के द्वारा नहीं हो सकृती । हमारे प्रियजन परलोक गमन के अनन्तर हम लोगों के साथ सूक्ष्म शरीर में रहकर हमारी रक्षा कर सकृते हैं । तत्पश्चात् यदि हम लोग धर्म्म पथ पर चलें तो हमारे परलोक गमन होने पर उन से मेल हो सकृता है, अथवा कदाचित् यहीं मेल हो सकृता है । यदि केवल मैं ही मेरे प्रियजनों से मिलता तो ऐसी बात नहीं लिख सकृता किन्तु जितने लोग हमारे साथ चक्र में बैठा करते थे प्रायः वे सब ही अपने प्रियजनों से मिले हैं इस कारण हमारा यह विश्वास अकाट्य है ।

(३) यह भी सिद्ध हो चुका है कि हम लोगों के मन के बहुत गुप्त सम्बाद परलोकगामी आत्माओं को विदित हो सकृते हैं और उनको वे प्रकाशित भी कर सकृते हैं । इस का प्रमाण इस शास्त्र के अभ्यासकर्त्ता मात्र को ही अवश्य ही मिला करता है ।

(४) परलोकगामी आत्माओं में अवस्था भेद है, और परलोक में भी निकृष्टता और उत्कृष्टता है । अपने कर्म्मों के अनुसार परलोक गामी जीवगण उत्कृष्ट और निकृष्ट दशा को प्राप्त हुआ करते हैं ।

(५) यह बात सिद्ध ही है कि हम जैसा कर्म्म करेंगे ठीक वैसा ही फल हम लोगों को परलोक में मिले गा । हमारे परजन्म में सुख और दुःख की प्राप्ति हमारे हाथ ही है । इस कारण हम लोगों को सदा

उत्तर– जब कोई उन्नत आत्मा यहां मृत्यु को प्राप्त होजाता है तो वह अपनी उन्नति के अनुसार क्रमशः फिरता हुआ अपने ही उपयोगी लोक को पहुंच जाता है; सूक्ष्म शरीर को एक लोक से दूसरे लोक में पहुंचते हुए कुछ विलम्ब नहीं लगता। जब वह आत्मा अपने निवास उपयोगी स्थान में पहुंच जाता है तब वह वहां के निवासियों के से देह को प्राप्त कर लेता है, नाना लोकों के नाना अवस्था के अनुसार नाना प्रकार के देह हुआ करते हैं। बहुत से लोकों के जीवों के देह मनुष्य के शरीर से भी बुरे हुआ करते हैं; किन्तु उन्नत गृह के जीवों के देह क्रमशः उन्नत ही होते हैं। मुझे अब लिखने का समय नहीं है इन्हीं सब बातों का ध्यान करके समझने से क्रमशः आप लोग परलोक को अच्छी तरह समझने लगेंगे। दस्तखत—बेकन"।

तदनन्तर तारीख चौबीसवीं मई को सभा का पुनः अधिवेशन हुआ, उस दिन आत्माओं की आवाहनक्रिया करने के अनन्तर पुनः लार्ड-बेकन साहब का आत्मा आया पुनः प्रश्नोत्तर द्वारा आध्यात्मिक अनुसंधानकार्य चलने लगा।

प्रश्न– आपने कहा था कि आत्मागण जिस लोक में रहते है उस लोक के बाहिर का हाल नहीं जान सकते। इस अवस्था को और भी जरा प्रकाशित करके वर्णन करिये?

उत्तर– पृथिवी से जो उच्चलोक हैं उन में यह शैली है कि वहां उन्नत लोकों के जीव निम्नलोक का संवाद जान सक्ते हैं परन्तु उन्नतलोकों का संवाद कुछ भी नहीं जान सक्ते। परन्तु उन उन्नत लोकों में ऐसे भी धार्मिक परलोक गामी आत्मा हुआ करते हैं कि जो क्रमश उन्नत हो कर ईश्वर के निकटवर्ती अर्थात् बहुत ही

उन्नत लोक को चले जाने के योग्य होजाते हैं; परन्तु ऐसा प्रारब्ध बहुत कम हुआ करता है। पृथिवी के निम्न गृहों की अवस्था इस से विपरीत है क्योंकि ये सब लोक निकृष्ट हैं।

प्रश्न—ऐसे मूर्ख जीव भी क्या स्वर्ग में हैं कि जो अपने ऊपर के लोकों को न जानने के कारण और कोई उन्नत लोक हो सक्ते हैं ऐसा नहीं मानते; अर्थात् अपने को ही क्या वे सब से उन्नत समझते हैं?

उत्तर—हां स्वर्ग में ऐसे भी जीव हैं जो अपने को सब से बढ़ कर मानते हैं; और अपने लोक से कोई उन्नत लोक हैं ऐसा स्वीकार नहीं करते। ये सब बुरी आत्मा नहीं हैं परन्तु उन के अहंकार से ही उन में यह अज्ञान रह गया है; यह पूर्व संस्कार का ही कार्य्य है क्योंकि पृथिवी पर भी भले बुरे लोग हैं।

प्रश्न—क्या ऊंचे लोकों की आत्मा भी यहां लौट कर आ सक्ती है एवं नीचे लोकों की आत्माएं यहां आती हैं?

उत्तर—हां ऊपर की आत्मा अवनति के कारण और नीचे की आत्मा उन्नति के कारण कदापि पृथिवी में आसकें।

प्रश्न। इस संसार में देखते है कि अच्छे जीवों का सङ्ग बुरे जीवों से होता है इस कारण अच्छे जीवों को उन्नति का अवसर नहीं मिलता, इस प्रकार क्या परलोक में भी हुआ करता है?

उत्तर—नहीं यह बात कदापि नहीं हो सक्ती; यह ईश्वर नियम के विरुद्ध है ऐसा अविचार न पृथिवी पर है और न अन्य गृहों में हो सक्ता है। क्योंकि आत्माएं कभी ऐसे स्थानों में नहीं रक्खी जा सक्ती जहां उन के उन्नति कर ने का अवसर उन को न मिलता हो। ईश्वर की दया सब जीवों पर समान है इस कारण सब लोको में जीवगणों को

उत्तर— जब कोई उन्नत आत्मा यहां मृत्यु को प्राप्त होजाता है तो वह अपनी उन्नति के अनुसार क्रमशः फिरता हुआ अपने ही उपयोगी लोक को पहुंच जाता है; सूक्ष्म शरीर को एक लोक से दूसरे लोक में पहुंचते हुए कुछ विलम्ब नहीं लगता। जब वह आत्मा अपने निवास उपयोगी स्थान में पहुंच जाता है तब वह वहां के निवासियों के से देह को प्राप्त कर लेता है, नाना लोकों के नाना अवस्था के अनुसार नाना प्रकार के देह हुआ करते हैं। बहुत से लोकों के जीवों के देह मनुष्य के शरीर से भी बुरे हुआ करते हैं; किन्तु उन्नत गृह के जीवों के देह क्रमशः उन्नत ही होते हैं। मुझे अब लिखने का समय नहीं है इन्हीं सब बातों का ध्यानकरके समझने से क्रमशः आप लोग परलोक को अच्छी तरह समझने लगोगे। दस्तखत—बेकन"।

तदनन्तर तारीख चौबीसवीं मई को सभा का पुन अधिवेशन हुआ, उस दिन आत्माओं की आवाहनक्रिया करने के अनन्तर पुनः लार्ड बेकन साहब का आत्मा आया पुनः प्रश्नोत्तर द्वारा आध्यात्मिक अनुसंधानकार्य चलने लगा।

प्रश्न— आपने कहा था कि आत्मागण जिस लोकमें रहते हैं उस लोक के बाहिर का हाल नहीं जान सकते। इस अवस्था को और भी जरा प्रकाशित करके वर्णन करिये?

उत्तर— पृथिवी से जो उच्चलोक हैं उन में यह शैलीहै कि वहां उन्नत लोकों के जीव निम्नलोक का संवाद जान सक्ते है परन्तु उन्नतलोकों का संवाद कुछ भी नहीं जान सक्ते। परन्तु उन उन्नत लोकों में ऐसे भी धार्मिक परलोक गामी आत्मा हुआ करते हैं जो क्रमश उन्नत हो कर ईश्वर के निकटवर्ती अर्थात् बहुत ही

उन्नत लोक को चले जाने के योग्य होजाते हैं; परन्तु ऐसा प्रारब्ध बहुत कम हुआ करता है। पृथिवी के निम्न गृहों की अवस्था इस से विपरीत है क्योंकि वे सब लोक निकृष्ट हैं।

प्रश्न—ऐसे मूर्ख जीव भी क्या स्वर्ग में हैं कि जो अपने ऊपर के लोकों को न जानने के कारण और कोई उन्नत लोक होसक्ते है ऐसा नहीं मानते; अर्थात् अपने को ही क्या वे सब से उन्नत समझते है ?

उत्तर— हां स्वर्ग में ऐसे भी जीव हैं जो अपने को सब से बढ़ कर मानते हैं; और अपने लोक से कोई उन्नत लोक हैं ऐसा स्वीकार नहीं करते। वे सब बुरी आत्मा नहीं हैं परन्तु उन के अहंकार से ही उन में यह अज्ञान रह गया है; यह पूर्व संस्कार का ही कार्य्य है क्योंकि पृथिवी पर भी भले बुरे लोग हैं।

प्रश्न—क्या ऊंचे लोकों की आत्मा भी यहां लोट कर आ सक्ती हैं एवं नीचे लोकों की आत्माएं यहां आती हैं ?

उत्तर—हां ऊपर की आत्मा अवनति के कारण और नीचे की आत्मा उन्नति के कारण कदापि पृथिवी में आसकें।

प्रश्न। इस संसार में देखते है कि अच्छे जीवों का सङ्ग बुरे जीवों से होता है इस कारण अच्छे जीवों को उन्नति का अवसर नहीं मिलता, इस प्रकार क्या परलोक में भी हुआ करता है ?

उत्तर—नहीं यह बात कदापि नहीं हो सक्ती; यह ईश्वर नियम के विरुद्ध है ऐसा अविचार न पृथिवी पर है और न अन्य गृहों में हो सक्ता है। क्योंकि आत्माएं कभी ऐसे स्थानों में नहीं रक्खी जा सक्ती जहां उन के उन्नति कर ने का अवसर उन को न मिलता हो। ईश्वर की दया सब जीवों पर समान है इस कारण सब लोकों में जीवगणों को

उन्नति करने का अवसर समान मिलता है। भेद इतना ही है कि कर्म्म साधन में पृथिवी की कुछ विलक्षणता है।

प्रश्न। परलोक गामी आत्मा क्या अपने पूर्व सम्बन्ध को भूल-जाते हैं अथवा पूर्व सम्बन्धियों से मन में सम्बन्ध रखते हैं?

उत्तर। *यह जीव के आध्यात्मिक ज्ञान के अनुसार उस में इस* प्रकार का सम्बन्ध कम अथवा अधिक रहजाता है। परलोक गामी आत्मागण मन में पूर्वस्मृति रखते हुए देख पड़ते हैं और अपने पुत्र कलत्र मित्र के सत् अवस्था असत् कर्म्म से सुख अथवा दुःख अनु-भव किया करते हैं। परन्तु यह अवस्था सब में एकसी नहीं होती"।

इस प्रकार बहुतसे आध्यात्मिक *विज्ञान संवाद जज साहब ने अ-*पने इस्पीरिच्युअलीजम नामक पुस्तक में प्रकाशित कर के परलोक विज्ञान का दृढ़ कर दिखाया है। और ग्रह उपग्रहों की अनन्तता के विषय में प्रोफेसर बेली (Professor Bailly) साहिब ने अनुमान प्रमाण द्वारा सिद्ध कर दिखाया है कि, "जिस प्रकार हमारी पृथिवी *अपने उपग्रह सहित सूर्य्य के चारों ओर भ्रमण करती है; उसी प्र-*कार हमारे सूर्य भी अपने सब ग्रहों के साहित ध्रुव नामक बृहत् सूर्य के चारों ओर भ्रमण किया करते हैं इस कारण उन को बृहत् सूर्य्य कहसक्ते हैं। इसी प्रकार अनन्त बृहत् सूर्य अपने अधीन सूर्य तथा अनन्त ग्रह और उपग्रह साहित उसी रीति पर एक विराट् सूर्य के *चारों ओर भ्रमण कर रहे हैं।* और उसी प्रकार अनन्त *विराट् सूर्य* एक महा सूर्य के चारों ओर भ्रमण करते हैं; इस प्रकार ग्रह उपग्रह, सूर्य, महासूर्य, और विराट् सूर्य आदि का अन्त नहीं है" ऊपरोक्त पश्चि-मी विद्वान् गणों के प्रमाणवाक्य द्वारा पूज्य पाद महर्षि गणों का-

परलोक सम्बन्धीय विचार पूर्णरूपेण सिद्ध होता है। जिस विषय को नवीन शिक्षित युवकगण महर्षि गणों की कपोलकल्पना करके मान ते थे, आजदिन उन युवकों के पश्चिमी गुरुगण अब उन्हीं सिद्धान्तों को अपनी वैज्ञानिक बुद्धिद्वारा अन्वेषण करते जाते हैं। फलतः परलोक सम्बन्ध में पूज्यपाद महर्षि गण पूर्व ही जो सिद्धान्त वाक्य प्रकाशित करगये है। वे सब आज दिन पाश्चात्य विज्ञान द्वारा यथावत् सिद्ध होचुके हैं। जीव शरीर स्थूल और सूक्ष्म आदि भाग में विभक्त होना, स्वर्ग और नरक आदि लोकों का सम्भव होना, ब्रह्माण्डों की अनन्तता का सम्भव होना, ज्ञान प्रवाह में जीव कर्म्म द्वारा क्रमोन्नति करना, जीवित और मृतजीवों में परस्पर सम्बन्ध रहना, जीवित मनुष्यों के किये हुए कर्मों द्वारा मृत परलोक गामी आत्मा को सुख पहुंचना, श्राद्ध आदि द्वारा मृतजीव का उपकार सम्भव होना, मृत्यु के अनन्तर प्राय. मूर्च्छा होने के कारण प्रेतत्व प्राप्ति का संभावना रहना इत्यादि सब आध्यात्मिकतत्व ऊपरोक्त अनुसंधान द्वारा सिद्ध हो चुके हैं। इसि प्रकार जितना विचार किया जाता है उतना ही नाना विषयों में पूज्यपाद महर्षि गणों की अभ्रान्त बुद्धि और नाना अद्भुत आविष्कारों का परिचय मिला है और मिल सकता है। इस क्षुद्र पुस्तक में केवल कतिपय प्रधान प्रधान् विषय वर्णन द्वारा नवीन शिक्षित भारत वासियों को अपने प्रवीण भारत का कुछ कुछ परिचय दिया गया। विद्वान्गण आर्य्य शास्त्रों को निरपेक्ष बुद्धि द्वारा जितना पाठ करेंगे उतना ही इस विषय का परिचय वे स्वतः ही प्राप्त होते जायेंगे इस में सन्देह मात्र नहीं।

———

धर्म्म एवम् मुक्ति

जीव की श्रेष्ठता का प्रमाण बुद्धि है, बुद्धि की श्रेष्ठता का प्रमाण ज्ञानाधिक्य है, और ज्ञान की श्रेष्ठता का प्रमाण धर्म ज्ञान की पूर्णता है। भारतवर्ष ही पृथिवी भर में धर्म्मभूमि है, भारत माता से ही और सब बालकों ने धर्म्म ज्ञान की शिक्षा पाई है; धर्म्म जगत् में भारत वर्ष ही आदि गुरु है। आर्य्य जाति के प्राचीनत्व में तो किसी को संदेह ही नहीं रहा; पुनः आर्य्य ग्रन्थों से और नाना बौद्ध ग्रन्थों से यह प्रमाण ही मिलता है कि आर्य्य धर्म्म से ही बौद्ध धर्म्म की सृष्टि हुई है; सत्ययुग, त्रेतायुग, द्वापरयुग, और कलियुग के तीन सहस्र वर्ष बीते तक एक मात्र अभ्रान्त सनातन आर्य्य धर्म्म ही पृथिवी को पूर्ण रूपेण प्रकाशित करता रहा; तत्पश्चात् ढाई सहस्र वर्ष के लगभग बीते इसी भारत भूमि में श्री भगवान् बुद्ध देव ने प्रकट होकर बौद्ध धर्म्म प्रचार द्वारा नवयुग की सृष्टि की, और क्रमशः वह नवधर्म्म समस्त संसार में फैल गया। अब भी बौद्ध धर्म्म और और धर्म्मों से अधिक मनुष्यों में प्रचरित है, अब भी एक तृतीय अंश से अधिक मनुष्य जाति इस धर्म्म को मानते हैं; परन्तु यह भी प्रमाणित ही है कि किसी काल में यह धर्म्म समस्त पृथिवी पर व्याप्त हो गया था। यद्दिच और समस्त संसार एक समय बौद्ध धर्म्मावलम्बी हो गया था, तत्राच उस समय भी भारत वर्ष अभ्रान्त आर्य्य धर्म्म ज्ञान शून्य न था, बहुत धार्मिकगण तब भी प्रधान रूपेण इस पवित्र भूमि में उपस्थित थे जिन के द्वारा ही पुनः इस धर्म्म का उद्धार हुआ। बौद्ध धर्म से नीचे अब ईसाई धर्म्म का विस्तार समझा जाता है, परन्तु बौद्ध ग्रन्थों में यह स्पष्ट प्रमाण है

कि ईसाई धर्म्म प्रचारक महात्मा ईसा ने प्रथम अवस्था में इस भारतवर्ष में आकर यहां के ब्राह्मण और बौद्ध आचार्य्यों के निकट विद्याभ्यास किया था, और तत्पश्चात् बौद्धों के निकट बौद्ध धर्म्म में दीक्षित हो पुनः स्वदेश में जा कर अपने उस नव धर्म्म की सृष्टि की थी। केवल बौद्ध धर्म्म पुस्तक ही इस विचार के प्रमाण नहीं हैं किन्तु आर्य्यावर्त्त से ईसा का सम्बन्ध हुआ था ऐसा प्रमाण सनातनधर्म्म पुस्तकों में भी मिलता है, और यूरोप की प्रसिद्ध पण्डिता मेडम ब्लभस्की (Madame H. P. Blavatsky) ने अपने ग्रन्थों में नाना युक्ति द्वारा सिद्ध किया है कि ईसाई धर्म्म बौद्ध धर्म्म का शिष्य है। ईसाई धर्म्म के नीचे आज दिन मुसलमान धर्म्म समझा जाता है; वह ईसाई धर्म्म का शिष्य है इस में तो सन्देह ही नहीं। मुसलमान धर्म्म प्रचारक महात्मा महम्मद अपने आप ही स्वीकार कर गए हैं कि ईसामसी उन से पूर्ववर्ती पैग़म्बर हैं, और उन्हों ने ईसा का सन्मान भी किया है; दूसरा प्रबल प्रमाण यह है कि यह दोनों धर्म्म एक ही भूमि में प्रकट हुए, जिन में से ईसाई धर्म्म प्रथम प्रकट हुआ और उस के ९०० बर्ष के उपरान्त मुसलमान धर्म्म ने जन्म लिया था। इन परंपरा सम्बंधों से भी यह प्रमाणित हुआ कि सनातन आर्य्य धर्म्म ही धर्म्म जगत् में आदि गुरु है, इन से ही शिक्षा पाकर और नाना धर्म्मों ने होश सम्हाला था। सनातनधर्म्म की श्रेष्ठता के तीन प्रबल प्रमाण हैं; प्रथम तो यह अपौरुषेय धर्म्म कब से आरम्भ हुआ अथवा कितने दिन से चला आता है, इस का परिज्ञान संसार भर में किसी को भी नहीं है, द्वितीय प्रमाण यह है कि और २ धर्म्मावलम्बी परधर्म्म की निन्दा में प्रवृत्त होकर उन पर धर्म्मावलम्बियों को स्वधर्म्म परित्याग का उपदेश दे कर अपने धर्म्म में

लाने में यत्न करते हैं, परन्तु सनातनधर्म्म में इस भ्रमपूर्ण अभ्यास का सम्बंध मात्र नहीं है; तृतीय प्रमाण यह है कि अन्य धर्म्मों में सब श्रेणी के मनुष्यों के लिये एक प्रकार का धर्म्म साधन विहित है, चाहे वह परम बुद्धिमान् हो, चाहे जड़ मूर्ख, चाहे जीतेन्द्रिय हो, चाहे भोग लोलुप, चाहे गृहस्थ हो, चाहे संन्यासी; चाहे दरिद्र हो, चाहे परम ऐश्वर्य्यवान, चाहे विकलांग रोगी हो, चाहे पूर्ण प्रकृतिवान, उन सबों के लिये ही अन्य धर्म्म में एक ही प्रकार का साधन विहित है, परन्तु सनातन धर्म्म में यह असम्पूर्णता नहीं देख पड़ती, इस अपौरुषेय धर्म्म में अधिकार भेद के कारण साधन भेद इतना विशेष है कि जिस में सब श्रेणी के मनुष्य ही अपनी अपनी योग्यता के अनुसार अपना अपना कल्याण साधन भली भांति कर सक्ते हैं। सनातनधर्म्म की मूर्त्ति, अन्तरगत बहिर्पूजा, विचार सम्बन्धीय आत्म स्वरूप निर्णयकारी ब्रह्म सद्भाव; सनातनधर्म्म का द्वैत और अद्वैत विज्ञान; सनातनधर्म्म का योगदर्शन सांख्यदर्शन, न्यायदर्शन, वैशेषिकदर्शन, मीमांसादर्शन और वेदान्तदर्शन; सनातनधर्म्म का मंत्रयोग, हठयोग, लययोग, और राजयोग, यह चार साधन मार्ग, और सनातनधर्म्म शास्त्रोक्त सदाचार ही इस अभ्रान्त धर्म्म की श्रेष्ठता प्रतिपादन कर रहे हैं। आजकल के प्रधान प्रधान पश्चिमी विद्वान्गणों ने यह मुक्तकण्ठ होकर स्वीकार किया है कि धर्म की सूक्ष्मता और परलोक सम्बंधीय गंभीर विचार में जितना प्राचीन आर्य्य जाति ने परिश्रम किया है और जितनी विलक्षणता दिखाई है उतना आजतक और कोई जाति नहीं कर सकी है। यह आर्य्यधर्म्म मंत की श्रेष्ठता का प्रमाण है कि थिओसोफीकल सुसाइटी (Theosophical society) यूरोप में ही प्रकट हुई और वह आर्य्यधर्म्म

की ही श्रेष्ठता प्रतिपादन द्वारा उस धर्म्म का पुनः प्रचार समस्त पृथिवी पर करने लगी; जिस सुसाइटी के सहस्र सहस्र सम्य गण आजदिन यूरोप और अमरिका में वर्तमान हैं और बढ़ते भी जाते हैं। यह आर्य्यधर्म की श्रेष्ठता का ही प्रमाण है कि ईसाई धर्म्मावलम्बी होने पर भी प्रोफेसर रोथ (Professor Roth) प्रोफेसर मोक्षमूलर (Professor F. Max Muller) प्रोफेसर वेलसन (Professor Wilson) प्रोफेसर हीगल(Professor Hegel)डाकटर डसीन(Dr. Dossein) आदि पश्चिमी विद्वान्गणों ने मुक्तकण्ठ होकर और धर्म्मों के संमुख अभ्रान्त वैदिक धर्म्म की महिमा गाई है। यह आर्य्यधर्म्म मत की श्रेष्ठता का प्रमाण है कि बिना चेष्टा के अपने आप ही फ्रान्स; जर्मनि और अमेरिका, आदि प्रदेशों के असंख्य विद्वान्गणों ने इस धर्म्म को स्वीकार कर लिया है। यह आर्य्य धर्म्म मत की श्रेष्ठता का प्रमाण है कि गत चिकेगो महा (The great worlds' for Chicago.) प्रदर्शिणी अन्तरगत महाधर्मोत्सव (The great paihoment of all Religions) में सनातन आर्य्यधर्म्म ही ने सर्व उच्च सिंहासन को प्राप्त किया था। इस कारण अब यह कहना ही पड़ेगा कि आर्य्यगण ही अपने श्रेष्ठ बुद्धि द्वारा ऐसे अभ्रान्त धर्म्म के आविष्कार कर्त्ता हैं; लौकिक विद्याओं की उन्नति में वे सब के आदि गुरु हैं तथा मनुष्यत्व की पूर्णता का पूर्ण परिचय देनेवाला पूर्ण धर्म्म बुद्धि के प्राप्त करने वाले भी वे प्राचीन भारतवासी ही थे इस में सन्देह मात्र नहीं।

इस संसार में सनातन धर्म्म के सिवाय और जितने अन्य धर्म्म हैं, उनके धर्म्म लक्षण तथा अपने धर्म्म में पृथिवी स्वर्ग का सा अन्तर;

है। इस संसार के अन्यान्य धर्म्मावलम्बी मात्र ही ईश्वर सम्बन्धीय और परलोक सम्बन्धीय दो चार दश बातों को स्वीकार कर लेने को ही अपना धर्म्म मानते हैं; परन्तु यह सनातनधर्म्म का धर्म्म लक्षण उस रीति पर नहीं है; वैदिकधर्म्म विज्ञान के निकट इस संसार का यावत् मात्रपदार्थ धर्म्म और अधर्म्म से पूर्ण है । आर्य्य गणों का सोना, जागना, बैठना, उठना, चलना, फिरना, खाना, पीना, हसना, रोना, अर्थात् ईश्वर उपासना से ले कर मल मूत्र आदि त्याग तक सबही धर्म्म और अधर्म्म विचार सेपूर्ण है। धर्म्म का लक्षण करने में सनातनआर्य्यशास्त्र ने ऐसी सार्व्वभौम भित्ती पर धर्म्म को स्थित किया है कि जिस भित्ती पर यह सृष्टि स्थिति और प्रलय आत्मिक संसार ही स्वयं स्थित हो रहा है। धर्म्म शब्द का निरुक्तगत अर्थ "नियम," और इसका धातुगत अर्थ "धारण" करना है इस कारण इस संसार को जिस ईश्वरीय नियम ने धारण कर रक्खा है उसी का नाम धर्म्म है। विचार ने से यही सिद्धान्त होगा कि सृष्टि के तीन गुण हैं अर्थात् सत्व, रज और तम यही तीन सृष्टि की सकल वस्तुओं में देखने में आते हैं, रजगुण से उत्पत्ति, सत्वगुण से स्थिति, और तमगुण से लय इन तीन अवस्थाओं के वशीभूत यह विश्वसंसार है; ऐसा कोई पदार्थ सृष्टि में नहीं है कि जो उत्पत्ति, स्थिति और लय इन तीनों अवस्थाओं से बचा हुआ हो; इस ब्रह्माण्ड के अगणित ग्रह समूह से लेकर एक क्षुद्रतृण पर्यंत इन तीन अवस्थाओं के अधीन है उसी प्रकार जीव प्रभाव भी इस नियम के अधीन ही प्रवाहित होता है, अर्थात् अवस्था भेद से जीव की सृष्टि, स्थिति और मुक्ति भी समझी जा सक्ती है; अहंतत्व से जीव मोहित हो कर कर्म्म प्रवाह में बहा, पुनः सृष्टि में बहता रहा, और तदनन्तर अ-

पने रूप को पहचान इस माया प्रवाह से उपराम होगया; यही तीन अवस्था जीव की भी कही जा सकती हैं । परन्तु धर्म्म वही है जो इस क्रिया के स्वाभाविक नियम को बाधा न दे, और अधर्म्म वह जो इस नियम में बाधा करे; अर्थात् जीव सृष्टि प्रवाह में पड़ने के अनन्तर क्रमशः अपने गुण भेद से उन्नत होता हुआ मुक्त होगा, इस क्रमोन्नति में जो बाधा दे वह अधर्म, और जो इस को सरल करदे वही धर्म पद वाच्य है । इसके उदाहरण में विचारिये कि किस भांति हमारे सोने, बैठने, तक के साथ धर्म अधर्म स्पर्श कर सकता है; यथा, यदि एक पुरुष दिवानिद्रा लेने से तमोगुण की वृद्धि करता है, और तमोगुण जीव के इस क्रमोन्नति में बाधा करता है, तो अवश्य ही दिवानिद्रा अधर्म का कारण हुआ; क्योंकि जीव में जितना तमोगुण अर्थात् अज्ञान स्पर्श करेगा उतना ही जीव जड़ता को प्राप्त हो जायगा, और जितना सत्वगुण की वृद्धि करेगा उतना ही चेतनत्व प्राप्त कर के मुक्ति अर्थात् लय की ओर अग्रेसर होगा; दिवानिद्रा ने इस क्रमोन्नति में बाधा की और सरल प्रवाह को रोका, इस कारण दिवानिद्रा अधर्म्म कार्य्य हुआ । सनातन धर्म्म शास्त्रोक्त धर्म्म और अधर्म्म पर विचार करने से यही सिद्धान्त होगा कि, पूज्य पाद त्रिकालदर्शी ऋषियों ने स्थूल और सूक्ष्म भेद से धर्म्म और अधर्म्म के विषय में जितना वर्णन किया है वह सब इसी सिद्धान्त पर है ; वेद , उपवेद , दर्शन , स्मृति, पुराण , और तन्त्र आदि शास्त्रों ने जो जो धर्म्म और अधर्म्म का विचार किया है वह सब इसी सार्व्व भौम भित्ती पर स्थित है। यह सनातन धर्म्म का ही वाक्य है कि "धर्म यो बाधते धर्म्मो न स धर्म्मः कुधर्मकः।

अविरोधी तु यो धर्म्मः स धर्म्मः सत्यविक्रमः" अर्थात् जो धर्म्म और॰ धर्म्म को बाधा दे वह कदापि धर्म्म नहीं है परन्तु कुधर्म्म है, और जो धर्म्म अविरोधी है वही यथार्थ में धर्म्म है। ऐसे सार्व्वभौममतयुक्त, गम्भीर और सर्व जीव हितकारी महावाक्य अभ्रान्त सनातनधर्म्म में ही मिल सक्ते हैं।

सनातनधर्म्म नेता पूज्यपाद महर्षिगणों ने इस संसार को क्षणभङ्गुर और असत्य जान कर मनुष्यगणों को यही उपदेश दिया है कि जीवगणों को सदा संसार लक्ष्य छोड़ कर आत्मा की ओर लक्ष्य करना उचित है। इस ब्रह्माण्ड के यावत् मात्र पदार्थ, स्वर्ग से ले कर पृथिवी तक, तथा मानसिक सुख से लेकर सकल शारीरिक सुख तक सब पदार्थ ही त्रिगुणात्मक हैं; जब त्रिगुणात्मक हैं तो परिवर्तनशील और नाशवान् भी हैं। इस कारण पूर्णज्ञानी महर्षिगणों के निकट यह संसार स्वप्नवत् मिथ्या है। उन पूज्यपादों ने जितने शास्त्र प्रणयन किये हैं, उन्हों ने जो कुछ सांसारिक अथवा आध्यात्मिक नियम प्रकाशित किया है, वे जो कुछ उपदेश कर गये हैं, उन सबों में यह एक मात्र अभ्रान्त लक्ष्य ही पाया जाता है कि, " बुद्धिमान् जीव वही कहा सक्ते हैं कि जो सदा अपना लक्ष्य अन्तरजगत् की ओर रखते हों "। संसार की ओर से मुंह फेर कर परमात्मा की ओर अग्रसर होना ही उन के सब उपदेशों का सार है; इसी भित्ती पर स्थित हो कर उन्हों ने जगत् को अपनी अनन्त ज्ञान ज्योति प्रदान की थी। उन के उपदेशों का यही सिद्धान्त है कि सर्वशक्तिमान् ईश्वर ने अपनी महाशक्ति की सहायता से इस संसार को उत्पन्न किया है; इस कारण इस ब्रह्माण्ड में दो ही पदार्थ अनुभव योग्य हैं यथा एक जड़

और एक चेतन अर्थात् एक पुरुषभाव और एक प्रकृति भाव। जिन में से पुरुषभाव ज्ञानमय चेतन और प्रकृतिभाव जड़मय त्रिगुणात्मक है। चेतन सत्ता द्वारा जड़ अर्थात् प्रकृति चैतन्ययुक्त होकर कार्य्य करने के योग्य हुई है, और जड़सत्ता अर्थात् प्रकृतिका ही विस्तार यह संसार है। जब प्रकृति का रूप त्रिगुणात्मक अर्थात् सत्व, रज और तमोगुणमय है तब अवश्य ही प्रकृति परिवर्तनशील है; इसी कारण प्रकृति विस्तार एवं लीला भूमि यह संसार सदा उत्पत्ति, स्थिति और लय के अधीन होकर त्रिताप का कारण होरहा है। जब संसार ही त्रिगुणात्मक और त्रिताप के कारण से पूर्ण है तो इससे सम्बन्ध रखने वाले; जीव अवश्य ही उसी नियम के वशीभूत हो कर सदा त्रिताप से तापित रहेंगे इस में सन्देह मात्र नहीं। परन्तु चेतनसत्ता आत्मा सदा एक रूप है, उस भाव में कुछ भी परिवर्त्तन होने की सम्भावना नहीं क्योंकि आत्मभाव त्रिगुणातीत और ज्ञानपूर्ण भाव है। जहां ज्ञान की पूर्णता वहां आनन्द की पूर्णता होना भी सम्भव है; इस कारण आत्मभाव परमानन्द पूर्ण भाव है। जीव में जितनी जड़सत्ता अर्थात् अज्ञान की अधिकता रहती है उतनी ही जीव में त्रिताप की वृद्धि हुआ करती है; परन्तु जीव में जितनी चेतन भाव की वृद्धि होती जाती है उतनाही जीव आनन्द को प्राप्त होता जाता है। और यही चेतनभाव की पूर्णता ही परमानन्द रूप मोक्ष पद की प्राप्ति है, जीव क्रमोन्नति द्वारा इसी रीति पर जड़ राज्य से हो कर चेतन राज्य का अधिकारी होता हुआ पूर्ण ज्ञानमय कैवल्य पद को प्राप्त कर लेता है। जीव की इस क्रमोन्नति में धर्म्म ही उसके लिये एक मात्र सहायक है, केवल मात्र धर्म्म पथ पर चलने से ही जीव क्रमशः परमानन्द पूर्ण आत्मपद को प्राप्त कर ले-

ता है। जीव में जड़ और चेतन सत्ता दोनों वर्त्तमान है इसकारण से ही जीव के साथ जड़सत्तारूप कर्म्म बन्धन और चैतन्य सत्तारूप ज्ञान देख पड़ता है। यह चैतन्य सत्ता के प्रकाश का ही कारण है कि जीव सदा सुख अन्वेषण करता हुआ कर्म्म बन्धन में फँसा रहता है; यदिच कर्म्म बन्धन जड़ सत्ता अर्थात् प्रकृतिप्रभाव है परन्तु सुख अन्वेषण करना यह चेतनसत्ता आत्मभाव का निश्चय कारक है। जीव जो कुछ करता है वह सुख की इच्छा से ही करता है, यदि जीव में सुखप्राप्ति की इच्छा न होती तो कदापि जीव कर्म्म प्रभाव में पुरुषार्थ न करता। यह तो सिद्धान्त ही है कि सब जीव ही सुख अभिलाषा से कर्म्म करते है, परन्तु अब विचारने योग्य बात यह है कि जीव विषय वासना पूर्ति से क्या सुख प्राप्त कर सकते है, अथवा सुख का लक्ष्य कुछ और ही है। इस के उत्तर में यही निश्चय होगा कि यदिच विषय वासना के पूर्ण होते समय एक प्रकार की सुखदाई वृत्ति अनुभव होती है, और विषय तृप्ति होने के पूर्व भी आशारूपेण कुछ सुख सा प्रतीत होता है; परन्तु यह उभय आनन्द ही यथार्थ में आनन्द नहीं है, क्योंकि विषयी का लक्ष्य यदिच सुख की ओर था और उस की यही आशा थी कि विषय वासना पूर्ण होते ही न जानेकैसा अपूर्व सुख पावेंगे, परन्तु जब विषय वासना पूर्ण हो गई तो उसके अभाव से एक दूसरा दुःख उठ खड़ा हुआ। इस के उदाहरण में विचार सकते हैं कि एक मनुष्य की यह वासना हुई कि मुझे सहस्र मुद्रा की प्राप्ति हो तो मैं परम सुख को प्राप्त हो जाऊ, तत्पश्चात् यदि उस की वहवासना पूर्ण हो तो उसका क्या वह आनन्द स्थायी होगा, कदापि नहीं, सहस्र मुद्रा प्राप्त होते ही उस को पुन. अधिक प्राप्ति की इच्छा होगी, और

इसी प्रकार उस में सुख अन्वेषण कारी महादुःख बना ही रहेगा। इन विचारों से यही सिद्ध होता है कि यदि च जीवगणों की गति सुख अन्वेषण की ओर है, परन्तु विषय अन्वेषण में वह सुख, जीव गणों को नहीं प्राप्त होता; वैषयिक सुख एक भ्रमपूर्ण सुख है। यह पूर्व ही सिद्ध हो चुका है कि पूर्ण ज्ञान रूप आत्मा में ही पूर्ण सुख की स्थिति है। वह पूर्ण सुख की आत्मसत्ता जीवगणों में है इस कारण ही जीवगण उसी आत्मभाव को ढूंढते हुए अपने अज्ञान के कारण प्रकृति लीला विस्तार रूपी वैषयिक मरीचिका में फँस जाते हैं; उनका लक्ष्य सत्य की ओर होने पर भी मृग की नाईं भूल कर वे कुछ से कुछ समझने लगते हैं; और इसी भ्रम के कारण उनकी स्वाभाविक गति चैतन्य की ओर होने पर भी वे जड़राज्य में फँसे ही रहते हैं। जीव का यह फँसना रूप कार्य्य का कारण एक मात्र अविद्या अर्थात् अज्ञान है; और धर्म्म साधन रूप दीपक की सहायता से ही जीव क्रमशः अग्रेसर होता हुआ परमानन्द रुपी आत्म भूमि में पहुंच जाता है। सनातन धर्म्मोक्त साधन शैली द्वारा जीव क्रमोन्नति को प्राप्त करता हुआ शेष में चैतन्य की पूर्णता को प्राप्त कर के परमानन्दपद का अधिकारी हो जाता है इस पद पर पहुंच ने से चैतन्य का सम्बन्ध जड़ से पूर्णरूपेण छूट जाता है; चैतन्य अंशजीव तब जड़रूप प्रकृति के फन्दे से छूट कर आवागमन रूप प्रवाह से बच जाता है; वायु कम्पित जल का बुल-बुला तब अगम अपार समुद्र गर्भ में लय को प्राप्त हो कर समुद्र के पूर्णानन्द का अधिकारी हो जाता है। यह चैतन्य की पूर्णता, यह ज्ञान की चरमसीमा, यह परमानन्द का परम पद ही सनातन धर्म्म का लक्ष्य है; इस भित्ती पर स्थित हो कर, इसी अधिकार

को प्राप्त कराने के लिये पूज्यपाद महर्षिगण अगणित शास्त्र प्रणयन कर गये हैं। सनातनधर्म्म के चारों वेद, सनातनधर्म्म के सब दर्शन शास्त्र, सनातनधर्म्म की सब स्मृति और पुराण, सनातनधर्म्म के सब उपवेद और तन्त्र आदि शास्त्र सब ही इसी एक मात्र लक्ष्य के प्राप्त करने के अर्थ एक वाक्य हो कर विभिन्न अधिकारियों को विभिन्न मार्ग द्वारा इसी एक स्थान पर पहुंचाने को प्रयत्न कर रहे हैं।

पूज्यपाद त्रिकालदर्शी महर्षिगणों की महिमा जितनी की जाय उतनी कम है जो कुछ मनुष्यज्ञान उपयोगी आविष्कार समूह पूज्यपाद गण कर गये हैं, जो कुछ सदाचार एवं धर्म्म का वर्णन वे प्रकाशित कर गये हैं। उस प्रकार की पूर्णता न कभी हुई है और न होगी। इस कारण आर्य्य सन्तान मात्र को ही उचित है कि अपने पूर्व गौरव को विस्मृत न हों, और धैर्य्य, साहस उद्यम तथा धर्म्मवृत्ति की सहायता से क्रमशः अपने पूर्व अवस्था की ओर अग्रेसर होने के लिये पुरुषार्थ करें। परम कारुणिक श्रीभगवान् की कृपा से आज दिन इस भारत वर्ष में शान्ति स्थापन करने के अर्थ उनको बुद्धिमान्, विद्वान् तथा न्याय परायण इङ्गलेन्ड राज की सहायता मिली है, ऐसा उन्नति उपयोगी सुअवसर दुर्ल्लभ है इस में सन्देह नहीं। आर्य्य सन्तानगण स्वभाव से ही शान्ति युक्त और बुद्धि जीवी हैं; शान्तगुण से बुद्धि की उन्नति होती है, और बुद्धिमान् पुरुष ही सत् असत् विचार युक्त होकर अपना कर्तव्य विचार सकते हैं; इस कारण भारतवर्षीय महात्मा गणों को आशा है कि आर्य्य सन्तानगण पुनः अपने स्वरूप अनुभव करने में समर्थ होंगे। आर्य्य सन्तानों को सदा स्मरण रखना उचित है वे ही पृथिवी के आदि गुरु वंशोद्भव हैं; उनको विचारना उचित है कि उनके पूर्व्व पुरुषों का ज्ञान, उनके पूर्व्व

पुरुषों की जीव हितकारी वृत्ति, उनके पूर्व्व पुरुषों का विषय वैराग्य, उन के पूर्व्व पुरुषों का आध्यात्मिक विचार द्वारा ही आज दिन जगत् आलोकित हो रहा है। उनको विचारना उचित है कि प्राचीन आर्य्य जाति ही आदि मनुष्य, प्राचीन आर्य्य जाति ही आदि शिक्षित, प्राचीन आर्य्य जाति ही आदि सभ्य, प्राचीन आर्य्य जाति ही आदि शिल्पी, प्राचीन आर्य्य जाति ही आदि मनन शील, प्राचीन आर्य्य जाति ही आदि धार्म्मिक, और प्राचीन आर्य्य जाति ही आदि आध्यात्मिक ज्ञान अनुसंधान कारी थे इस में सन्देह नहीं। उन को सदा स्मरण रखना उचित है कि पूज्य पाद आर्य्य महर्षिगण ही आदि कवि, पूज्य पाद आर्य्य महर्षिगण ही आदि ज्ञानी, पूज्यपाद आर्य्य महर्षिगण ही आदि विज्ञानवित्, पूज्य पाद आर्य्य महर्षिगण ही आदि योगी और पूज्य पाद आर्य्य महर्षिगण ही भगवद्भक्त थे इस में संशय मात्र नहीं है। किमधिकमिति।

ओं शान्तिः शान्तिः शान्तिः हरिःओम्

॥ ओ३म् ॥

मातृ भूमि विषयक गीत।

(१) भैरवी रागिनी में गाने योग्य।

(तालफेर)

अब कितने दिन होइ मानहीन हे भाई।
इस भांति काटि दिन रैन,
होय बे चैन,
निज काज बिसारि करिहो लरिकाई॥
किहि दुख समुद्र अपार समुझि बुड़ जैहो,
अति दूरहि देख तरङ्ग,
हो बुद्धि भङ्ग,
सब आस गंमाय के नाव डुबै हो॥ १॥
भारत आरत देखि नींद अब कैसे आती,
भ्रातन को अब छोड़ भोग सुख कैसे भाती।
वही है भारत यह जाको सब जग ने पूजा,
वहीं हिमाचल अचल जाके सम और न दूजा।
जमुना सरजू आदि बहत मिल वही मा गंगे।
दीन पतित उद्धारहिं तारहिं तरल तरंगे।
सब ही वही हैं पर नहीं है कछु भी हमारी,
(हा !) सबही विधाता दीन छीन लई सारी।
अब कहाँ भरत बलिराम युधिष्ठिर आदि ययाती,
अब कहाँ पराशर व्यासदेव मानव मरयाती।

अब कहाँ पवन सुत भीम अर्जुन महवीरा,
अब कहाँ कृष्ण शाक्य* शङ्कर महाधीरा।
अब रही अविद्या कलह मूढतारातो,
जहं देखहु तहं दुःखहि दुःख लखातो ।
यह सुख सूरज को उदय नहीं अब दीखत,
सब दिन रजनी सौ अन्धकारमय बीतत ।
अब धर्म्म एकता साहस प्रेम बिसारी,
तजि उद्यम सब ही दास वृत्ति अनुसारी ।
निज बास भूलि पर—बास करनलग लागे,
लखि दास पत्र बदले दुर भीखहि मांगे ।
परवेस करहिं परदेश गये करि आसा,
पर रीति सिखे पुनि त्याग करी निज भासा ।
परतोखन हित कुल शील धर्म्म सब दीन्हे,
पर पोखन को निज सर्वस्वहिं पन कीन्हे ।
पर रक्षा हित बिन सोचहिं प्राण जो दीन्हे,
पर दास जाति लखि कोउ कछु पूछ न कीन्हे ।
तज निज विद्या घोर अविद्या लीन्हि पराई,
आंखि मीचि निज रत्न दीन्ह औरन को धाई ।
जग मोहन निज शिल्प सबहि बिलगाई ।
पर पण्य[१] से ढांकत तन मन लाज न आई ।

---

* बुद्ध देव ।

[१] जो पदार्थ दूसरे मुल्क से अपने देश में बिकने को आवे ।

धन रत्न गये अब कांच भये गृह शोभा,
सहधर्मिनि सहचारिनि सब मन लोभा।
सार्व्वभौमता त्यागि धर्म्म उपधर्म्महि जानी,
पर निन्दा गृह फूट धर्म्म को मूलहि मानी।
रमनी जाग जाग बहुज्ञान सिखे दुख पाई,
कछू न भयो अकाज गयो सब दासपनहिं बिसराई।
कहते भारत दुःख नयन भरि आवत हाय,
हृदय विदीरन होत अतिकण्ठ रोध हुइ जाय।
सुनि अनसुनि कर लेहिं देहि नहिं उत्तर भाई,
दास दशा में बधिर सबै मृगतृष्णाहिं धाई।
हाय हायरे कौन कहे यह दीर्घकथा,
कौन सुने सम सिन्धु अपार अगाध व्यथा ॥ २ ॥
हे करुणामयी, दीन दयामयी,
मा तुम बिन कौन अब पार करे।
ये भारत वासी, सकल दुख त्रासी,
तव चरन भिलासी विपदहरे।
लखि पुत्र मलिन मुख, क्यों न हरो दुःख,
जड़ता अलस अज्ञानहिं नास।
और न करि हो जगहास, दास हृदय यह आस।
करि हो निज नाम को गुन प्रकास ॥ ३ ॥

(२) जोगियारागिनी में गानेयोग्य।

और कितने दिन, हो ज्ञान हीन,
रहोगे भारत वासी ॥ १ ॥
क्या तुम थे, अब क्या हो रहे,
भाई नेत्र खोलि देखो मेटो तम रासी ॥ २ ॥
नीचन में नीच, हो रहे जग बीच,
सब उंगरी उठावत हैं करके उप हांसी ॥ ३ ॥
धिक् है उस जीवन, जु करें नाहिं मोचन,
अपनी भारत माता के दुःख रासी ॥ ४ ॥

(३) वागेश्री रागिनी में गाने योग्य।

(धनि धनि प्रताप,)

धनि धनि भारत भारत,
धनि सिसोद कुल धर्म्मरत,
जहँ प्रगटे प्रतापशाली श्री प्रताप ॥ १ ॥
धनि मेवार प्रदेश,
जहाँ के ऐसे नरेश,
जाके यश देश देश,

शान्त भयो जासे तापित भारत मनस्ताप ॥ २ ॥
वेद धर्म्म समाज राख्यो,
अवला की लाज राख्यो,
वीर धर्म्म काज राख्यो,
करचो अनसन सह्यो कित दुख आप ॥ ३ ॥
जय धर्म्म जय धर्म्म,
सदा जय सत्य कर्म्म,
प्रताप जान्यो याको मर्म्म,
हे धर्म्म राज मेटो प्रताप को त्रितापः* ॥ ४ ॥

(४) पूरवी रागिनी में गाने योग्य।

जय जय जय भारत भूमि ॥ १ ॥
पूरन प्रकृति तहां,
छः ऋतु प्रगटे जहाँ,[१]
यही आर्य्य खण्ड है जग में नामी ॥ २ ॥
पूरन ज्ञानी जन गन,

* सिसोदिया कुल तिलक, मेवार नरेश, स्वदेश हितैषी, धार्मिक वीरवर महाराणा प्रतापसिंह के प्रति आशीश वचन।

१ पृथिवी भर में से छः ऋतु केवल भारत वर्ष में ही होते हैं; यही भारत प्रकृति की पूर्णता का प्रधान प्रमाण है

जहाँ करिसकत (करत हैं) जन्म ग्रहन,[२]
साधक गन जहाँ होत हैं पूरन कामी ॥ ३ ॥
धर्म्म अर्थ काम मोक्ष,
जो देत जग को अपरोक्ष,
भारत विजय में जो समरथ वही (कहावत है) जगस्वामी ॥ ४ ॥

(५) पीलू रागिनी में गाने योग्य ।

अम्मारी, (भारत मातारी) !
तुम्हरी यह कौन दशा विधि करी ॥ १ ॥
क्यों बिथुराये केसा,
छिन भिन मलीन वेसा,
अविरत आंखिन नीर झरी ॥ २ ॥
हाय काल, हाय विधाता ! !
तुम होय वीरेन्द्र माता,
अब इत उत मांगत भीख फिरी ॥ ३ ॥
धिक् तुम्हरे पूत गनन को,
धिक् उनके विद्या धन को,
जिन माता भूखन जात मरी ॥ ४ ॥

---

२ सब धर्म्मों की आदि भूमि भारत है; आध्यात्मिक ज्ञानयुक्त मनुष्यों का भारत में जन्म लेना ही संभव है ।

(६) गारा भैरवी रागिनी में गानेयोग्य ।

——'०)——

अब आयोरे, आयो कलि काला ।
धरि अद्भुत रूप विकाराल कराला ॥ १ ॥
बरन धर्म्म औैर आश्रम धर्म्म,
बिसारो नर नारी याको मर्म्म,
ब्रह्म कुल कहायो दासकुल, भूल निज आश्रम कर्म्म ॥ २ ॥
कलि राहू आय मोह्यो सन्त हिं,
ग्रास्यो वेद सब सत ग्रन्थ हिं,
दम्भ स्वार्थ बस जाके जो भावत, सो प्रकास्यौ निज पन्थ हिं ॥ ३ ॥
पन्थ सोई जाको जो भावत,
ज्ञानी वही जो गाल बजावत,
मिथ्या मान अभिमान रत जोई, सोई अब सन्त कहावत ॥ ४ ॥
व्यभिचार रत जो श्रुतिपथत्यागी,
ब्रह्म ब्रह्म कहे सोही ज्ञानी वैरागी,
जाके नख जूट जटा लपटावत लम्पट होत खरो सो योगी ॥ ५ ॥
शूद्र द्विजन को ज्ञान सुनावहिं,
धरि गैरिक साज यों पैंव पुजावहिं,
ऐसे निज मत कल्पि, वेद अर्थन उलटावहिं ॥ ६ ॥
हरहिं शिष्य धन हेरा न हरहीं,
कुमति बताय नरक में परहीं,
गुरु शिष्य अन्ध बधिर कर लेखा, एक सुनत नहिं आन न देखहिं॥७॥
गुरु अरु चाहत पन्थ बढ़ावा

निज मत वर्द्धन श्रान मिटावा,
धर्म्म कर्म्म कछु नाहिन सिखावत, पन्थ अभिमान सिखावा ॥ ८ ॥
नारि विवस नर श्राप भुलाई,
नाचहिं जड़ मर्कट की नाई,
मात भ्रात पितु रिपुवत् जानत, सास ससुर सों प्रेम बढ़ाई ॥ ९ ॥
सुत मानहिं मात पितुहिं तबतक,
गृह नारि नहीं श्राई जब तक,
सुसरारि पियारि लगै अतिही, गुरु जन देखि दहत जनुपावक ॥ १० ॥
गुणमन्दिर सुन्दर पति त्यागहिं,
हाव भाव कर पर नर मोहहिं,
कुल ललना कुल धर्म्महिं त्यागत, अन्य धर्म्म अनुसरहिं ॥ ११ ॥
सौभागिनी विभूखन हीना,
विधवा धारहिं वेस नवीना,
नारीगन नर समता धारहिं, होय हीन लज्जा स्वाधीना ॥ १२ ॥
काम बस विवेक बिगारयो मनुजा,
वह मानत नहिं अनुजा तनुजा,
यह हाल बिहाल भयो सब को, आर्य्य भये अनार्य्य प्रजा ॥ १३ ॥
सम्हरावहिं बहु धाम संन्यासी,
निराश्रय ह्वै फिरते गृह वासी,
धन अभाव से गृही धर्म्म नसावत, धनवन्त होंय उदासी ॥ १४ ॥
धार्म्मिक गन विविध दुख पावहिं,
धर्म्म हीन नर आनन्द उड़ावहिं,
विपरीति रीति देख अविश्वासी जन, निजहिं विवेक नसावहिं ॥ १५ ॥

चतुर्वर्ने धारयो अनन्त विवरना,
साधू नाम के भये पन्थ अगणना,
वर्न वर्न और पन्थ पन्थ मिलि, करत स्वान आचरना ॥ १६ ॥
वणिक वृत्ति राजागन धारत,
धर्म त्यागि अर्थहिं हित आरत,
धर्म प्रतिज्ञा सुनाय के बातन, अन्तर देशहिं छारत ॥ १७ ॥
दम दान दया, पर दुःख हरता,
शील विवेक सन्तोख समता,
सब सतगुण ज्योति आय छिपी, व्यापत कालिमल घनता ॥ १८ ॥
हे शिवशङ्कर, कालि रूप प्रखरतर,
निरखत कम्पत मम, हिय थर थर,
तुम बिन कौन निवारै काल भय, तारै हम सम दुखी नर ॥ १९ ॥
हे काल जय कारी, त्रितापहारी,
तुम बिन कौन बचावन हारी,
निकारो मोहि या कराल काल जाल सों, त्रिताप ज्वाला निवारी ॥२०॥

(७) ललित रागिनी में गाने योग्य ।

"जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी"
यह शास्त्र वाक्य को मर्म जानि लेओ भाई भारतवासी ॥ १ ॥
आत्मा संबन्धयुक्त है देह से जैसे,
देह संबन्ध मानो निज भूमि से तैसे*,

---

* जब तक देहाध्यास है तब तक देह का और जीव का इस प्रकार एक ही सम्बन्ध है; उसी प्रकार भूमि के साथ उसी भूमि के मनुष्यों का वैसा ही संबन्ध है ।

जोरो तन से तन, मन से मन, तोरो भ्रम फांसी ॥ २ ॥
अब तो रीतो देखो बीतो बहुत काल,
हाल बेहाल कर अब आयो है सुकाल, *
अब तो होस सम्हारो अज्ञान टारो निवारो जग हाँसी ॥ ३ ॥
उठो भाइ उठ बैठो सचेत हो सब अब,
सब ही सुपूत कहावत तुम कहाओगे कब,
बीतो समय पुनि हाथ न आवत, बढ़त जात दुःखरासी ॥ ४ ॥

(८) आभीरी रागिनी में गाने योग्य।

(जननी जन्म भूमि !)

बन्दे भारतमातरम् ॥ १ ॥
सुजलां सुफलाम्,
मलयज शीतलाम्,
पुष्पितद्रुमदलशोभितां मातरम् ॥ २ ॥
सुभाषिनीं सरलाम्,
सुवेषिनीं सुखदाम्,
नमामि कमलां अतुलां मातरम्, ॥ ३ ॥
नमामि विद्यादायिनीम्,

---

* गतकाल से वर्तमानकाल का समय बहुत ही श्रेष्ठ है। गत-सहस्रवर्ष में भारतवासियों को ऐसा सुकाल नहीं मिला था। वर्तमान समय में सब भारतवासी ही वर्तमान राजा के सुशासन के कारण स्वाधीन रूप से अपना अपना धर्म साधन कर सकते हैं।

नमामि अविद्यानाशिनीम्,
नमामि जगनीव तारिणी मातरम् ॥ ४ ॥

(९) केदारनट रागिनी में गाने योग्य ।

हायरे तामसीमसी भारतमुख सही लगारत है ।
सदा यह बादत जात भारत को आरत करे डारत है ॥ १ ॥
भारत माता दिवा निसि,
सुमरत पूरबयश राशी,
करुणा स्वर से रोवत जात हृदय ज्वाल बारत है ॥ २ ॥
भारत सन्तान वीर्य्यहीन,
अन्न अभाव से तनुछीन,
मनुख समाज में दीन छीन ह्वै भीखहि भीख पुकारत है ॥ ३ ॥
हाय जगनाथ इन्हें निहारो,
१ तव जेष्ठ पुत्रन के दुःख टारो,
असहन है यह दुःख दाहन छीन हृदय अब नहीं धारत है ॥ ४ ॥

(१०) बिलावल रागिनी में गाने योग्य ।

आज भारत वासी सब मिल पूजो जगजननी ।
ब्रह्ममयी शक्तिमयी महादुर्गारूपिनी ॥ १ ॥
खड़ानन, गजानन,

१ भारतवर्ष ही सब से प्राचीन भूमि है और भारतवासीगण ही ने अतिप्राचीनकाल में सब से प्रथम और अधिक ज्ञान लाभ किया था

बानीकमलासन,
बल, बुद्धि, विद्या, धन,
बीच सोहैं सिंहवाहिनी ॥ २ ॥
आकाश पर देवगन,
करत हैं कुसुम बरखन,
अविद्या दानव दलन,
करत है विद्यारूपिनी ॥ ३ ॥
पाप ताप नास ह्वै हैं,
अधीन जीवन क्लेश जैहैं,
धर्म अर्थ काम पैहैं,
पूजत वह मोक्ष दायिनी * ॥ ४ ॥

(११) षड्ऋतु राग माला ।

भैरव राग में गाने योग्य ।

—(०)—

यह भारत भूमि को प्रताप,
जहाँ षड् ऋतु भ्रमत हैं आपहि आप, ॥ १ ॥

(ग्रीष्म ऋतु)

भैरव राग में गाने योग्य ।

—(※)—

ग्रीष्म को आसन,

* महा विद्या रूप का रूपक वर्णन । महा शक्ति की उपासना से इस प्रकार नाना शक्तियों की प्राप्ति होकर मनुष्य गण कल्यान को प्राप्त कर सकते है ।

प्रखर तपन,
ज्वलंत अनल है वाको वसन, ॥ २ ॥
तरु लतागन,
देखत ही कुम्हलान,
सरिता सुखान भये व्याकुल जीवगन ॥ ३ ॥

(वर्षा ऋतु)
मेघराग में गाने योग्य ।

चमकत चपल,
झर झर बरखत जल,
आयो बरखा सुकाल गड़ गड़ बाजत दमामा ॥ ४ ॥
नाचत मयूर,
पुलकित तरुवर,
हरखत नारी नर भयो पूर्न कामा ॥ ५ ॥

(शरत् ऋतु)
पञ्चम राग में गाने योग्य ।

आयो शरत् युवराज,
धारि चन्द्र को ताज,
नव दूर्वादल साजि अति मनोहर ॥ ६ ॥
सुवास हरसिंगार,

सुन्दर बन कुसुम हार,
धारि कुमुद कल्हार सोहत सरोवर ॥ ७ ॥

(हेमन्त ऋतु)

श्री राग में गाने योग्य।

———o)———

हरित बसन धारत,
हेमन्त पधारत,
घनसम धनबन सीस झुकावत ॥ ८ ॥
सिसिर बूंद झरत,
मुक्ता फल बरसत,
प्रान्त दिग् दिगन्त सुख सों हरखावत ॥ ९ ॥

(शीत ऋतु)

नट नारायण राग में गाने योग्य।

पुनि हिमालय वासी,
भेख तुमार रासी,
आयो प्रबल शीत जसों भीत हुतासन ॥ १० ॥
प्रबल बहत बयार,
थर थर कांपत संसार,
छीन दीन मन भयो छायो कुहर अकासन ॥ ११ ॥

(वसन्त ऋतु)

वसन्त राग में गाने योग्य ।

अब युवक युवती रंजन,
आयो कुसुम भूखन,
ऋतु राज वसन्त सकल जीव सुख दाई ॥१२ ॥
कोकिल कूंजत,
भ्रमर गूंजत,
द्रुमलता पुष्पित अटल सुखपाई ॥ १३ ॥

(१२) खट रागिनी में गाने योग्य ।

हे अरुन हो सकरुन आओ न भारत पर,
फिरो नाथ फिरो वहीं सौं भारत माता पर दया प्रकास कर ॥१॥
एक दिन हती जो राज राजेन्द्र रानी,
वही भई आज दीन भिखारिनी,
घोर दुःख से होय अचेतिनी,
सोवत हैं पुत्रहि ले उर ॥ २ ॥
देखत ही तुम्हें जीव कुल,
करेंगे संसार घोरशब्दाकुल,
जागत ही माता होगी व्याकुल,
तब करेगी हाहाकार ॥ ३ ॥
और जो पुनि आओ तपन,

तो करो ज्ञानप्रभा वर्षन,
करो भारत अज्ञान आकर्षन,
हे ज्ञानमय * प्रभाकर ॥ ४ ॥ इति

---

* प्रातः काल में सूर्य्योदय दर्शन करके मातृभूमिभक्त के मन का भाव ।

ॐ श्रीहरिः ॥

"निगमागम मण्डली,, की प्रकाशित पुस्तकों की नामावली

पुस्तक	*मू० सजिल्द	जि० रहित
(१) निगमागम चन्द्रिका (प्रथमभाग) कलाब्दाः ४९९७	१॥)	१)
(२) निगमागम चन्द्रिका (द्वितीयभाग) कलाब्दाः ४९९८	१॥)	१)
(३) नवीनदृष्टिमेंप्रवीनभारत	१॥)	१)
(४) भक्तिदर्शन (निगमागमी भाष्य सहित)	१॥)	१)
(५) गुरु गीता (सटीक)	॥)	।)
(६) साधन चतुष्टय (प्रथमभाग)	२)	१॥)
(७) गीतावली (प्रथमभाग)	१॥)	१)
(८) योगदर्शन (निगमागमी भाष्य सहित)	२॥)	२)

इन उपरोक्त पुस्तकों में नम्बर ५ तक की पुस्तकें छप कर तय्यार हैं और अब शेष छप रहीं हैं। इन के अतिरिक्त "निगमागम चन्द्रिका,, तृतीयभाग, सांख्यदर्शन (निगमागमी भाष्य सहित), और सभाष्य अन्यान्यदर्शन आदि ग्रन्थ क्रमशः प्रकाशित होते रहेंगे।

* डाक द्वारा मँगाने वाले ग्राहकों को ऊपर लिखे मूल्य अतिरिक्त डाकव्यय भी देना होगा।

ओं श्री ।

शुद्धाऽशुद्धपत्रम् ।

अशुद्ध रूप	शुद्ध रूप	पृष्ठ	पंक्ति
प्रतापवानेषु	प्रतापवत्सु	क	४
जीव–भारतहितकारी	जीव–हितकारी	ग	७
उद्धतनगभिदनुज	उद्धतनगनगभिदनुज	घ	१५
अयुक्तिक	अयौक्तिक	६	६
का	के	६	१२
धातृ	धात्री	६	१८
धातृ	धात्री	८	१५
स्वदेशयि और विदेशयि	स्वदेशीय और विदेशीय	१२	२३
तत्राच	तत्रच	१३	११
रीती	रीति	१७	१२
अलक्जन्डर	अैलेक्ज़ैन्डर	१७	१८
की	कि	१८	१०
उर्व्वघ्नी	उर्व्वघ्नी	१८	१३
गुडक	गुड़क	१८	१३
फेंकते हुए	फेंकते हुए;	१८	१९
वेदव्यासमी	वेदव्यासजी	१८	१९
Praetical	Practical	१९	६
तोप	तोपों	१९	१६
पढी जाती है	पढा जाता है	२०	१८
प्रोफेसर	प्रौफेसर	२०	१९

अशुद्ध रूप	शुद्ध रूप	पृष्ठ	पंक्ति
Professr	Professor	२०	१९
वैसे ही	वैसी ही	२१	११
है.	हैं	२३	१
करके	करके ही	२३	९
इस प्रकार के	इस प्रकार की	२३	१०
इतिहास वेत	इतिहासवेत्ता	२४	२
प्रोफेसर	प्रोफ़ेसर	२४	५
Professr	Professor	२४	५
नें	ने	२४	६
की	का	२४	६
यामेती	यामेति	२४	१२
खालिफ अालमानसर	खलीफ़ा अलमानसर	२४	२३
महम्मद बिनमूसा	मुहम्मद बिन मूसा	२५	२
सामुद्रिक केरल स्वरोदय	सामुद्रिक, केरल, स्वरोदय	२५	२१
मस्तिस्क	मस्तिष्क	२६	६
मस्तक	मस्तकों	२६	६
हवाल	हाल	२६	१६
दिया करते हैं	दिया करता है	२६	१७
के	की	२७	१९
Profosser Monier Willeams	ProfessorMonier Williams	२८	७
प्रोफेसर वेलसन	प्रोफ़ेसर विलसन	२८	८
Professer Wilson	ProfessorWilson	२८	८
भाषा का नाम	भाषाओं का नाम	२८	१५
उतनी	उतनी ही	२८	१८

अशुद्ध रूप	शुद्ध रूप	पृष्ठ	पंक्ति
विकसित होती है	विकसित होती हैं	२८	२२
संस्कृत भाषा के	संस्कृत भाषा में	२६	९
विद्या में	विद्या को भी	२९	१८
का तप	के तप	३०	१२
अनुकूलता	अनुकूलता ने	३०	१२
हो रहा है	हो रही है	३०	२१
भारत की	भारत के	३०	२१
भारत का	भारत के	३१	२
फैला रक्खा था;	फैलाया था;	३१	४
भारत का	भारत के	३१	५
वैश्यों का व्यापार	वैश्यों के व्यापार	३१	५
शूद्रों का शिल्प	शूद्रों के शिल्प	३१	६
इत ने	इतने	३१	८
जाति की	जाति के	३१	२१
आर्य जाति की	आर्य जाति के	३१	२३
ताडित	ताड़ित	३२	६-७
धर्म्म;	धर्म्म,	३२	१३
दुर्जय शक्ति शैलद्वारा	दुर्जय शक्ति शैल द्वारा	३२	१४
सन्मोहन अस्त्र	सम्मोहन अस्त्र	३२	१८
विज्ञान के	विज्ञान की	३२	२०
सिर	शिर	३२	२२
अष्टधात वज्रपात को	अष्टधातु वज्रपात को	३३	७

अशुद्ध रूप	शुद्ध रूप	पृष्ठ	पंक्ति
उत्तर सिरा	उत्तर शिरा	३३	८
अन्तरगत'	अन्तर्गत	३३	१७
(वेNonconduiter हैं)	(वे Nonconductor हैं)	३३	२१
सद्रूपाञ्जियों को	सधवा स्त्रियों को	३४	३
और और नाना	और नाना	३४	१६
दीर्घ आयु	दीर्घ आयु होसक्ते हैं	३४	२०
विपुत्र रेखा	विपुवद् रेखा	३६	७
न होगा	होगा	३६	२२
जोन से दिन दिवा रात्रि समान होता है	जिस दिन दिवा रात्रि समान होते हैं	३७	२
(P. tolemy)	(Ptolemy)	३७	३
स्वरूप के	स्वरूप को	३७	१४
विद्यार्थियों के	विद्यार्थियों की	३७	१५
कौन नहीं विश्वास करेगा	कौन विश्वास करेगा	३८	९
विश्वास नहीं करेंगे	विश्वास करेंगे	३८	१७
नहीं जान सक्ते हैं	मान सक्ते हैं	३९	२
यूरोपीय सम्वादों	यूरोपीय विचारों	३९	८
वेली	बेली	४२	४
(Ployfair)	(Plafair)	४२	४
(Lalor Spots)	(Solar Spots)	४२	१५
वही यह अंश को	उसी उस अंश को	४२	२२
शास्त्र के प्रधान गुरु हैं	शास्त्र की प्रधान गुरु हैं	४२	२३
"गुल्नाश तुल हिसाब„	" गुलासतुल् हिसाब„	४३	२

अशुद्ध रूप	शुद्ध रूप
विस्तर	विस्तार
महर्षिगण*	महर्षिगण में
दूसरे	दूसरे की
(Spiritualiseme)	(Spiritualism)
(Mesmereseem)	(Mesmerism)
स्पीरीच्युअलीज्म	स्पिरिच्युऐलिज़्म
म्यस मेरीज्म	मिस्मेरिज़्म
एडमएड्स	ऐडमण्ड्स
Edmomds	(Edmonds)
गृह और उपगृहों	ग्रह और उपग्रहों
दस्तखत—बेकम	दस्तखत- बेकन
गृहों	ग्रहों
लोट कर	लौट कर
विज्ञान का	विज्ञान की
होते जायगे	करते जायगे
मूर्त्ति, अन्तरगत	मूर्त्ति अन्तर्गत
For	Fair
Paihoment	Parliament
पृथिवी स्वर्ग का सा	नरक स्वर्ग का सा
दुख	दु:ख
महवीरा	महावीरा
लाक्ति	*लिप्ति
तन	तनि

अशुद्ध रूप	शुद्ध रूप	पृष्ठ
आशीष	आशिष	१००
मिन	भिन	१०१
वेसा	भेसा	१०१
विकाराल	विकराल	१०२
नाहिन	नहिन	१०२
अनुसराहिं	अनुसरहीं	१०२

इति ।

आवश्यक सूचना ।

अत्यन्त शोक के साथ प्रकट किया जाता है कि यद्यपि इस पु स्तक के अतिशुद्ध छपने का प्रबन्ध किया गया था परन्तु यन्त्रालय क अनवधानता के हेतु पुस्तक बहुत अशुद्ध छपी इस हेतु पाठक इस दो को क्षमा करें और शुद्धाऽशुद्ध पत्र के अनुसार मिलालें। इस शुद्धाऽशुः पत्र में भी बहुत से अशुद्ध शब्द नहीं लिखे गये है और विशेषत, अ ङ्गरेजी और संयुक्त शब्दों में तो (आदि से अंत तक) भारी अशु द्धि होगई है उस का भी भली भाति ध्यान रक्खें। श्री भगवान् कृ से दूसरी आवृत्ति में पुस्तक को इस दोष से निर्मल करने की पूरी चेष् की जायगी ।

ठाकुरप्रसाद शर्म

अनुक्रमणिका